THE FREE INDOLOGICAL COLLECTION

WWW.SANSKRITDOCUMENTS.ORG/TFIC

FAIR USE DECLARATION

This book is sourced from another online repository and provided to you at this site under the TFIC collection. It is provided under commonly held Fair Use guidelines for individual educational or research use. We believe that the book is in the public domain and public dissemination was the intent of the original repository. We applaud and support their work wholeheartedly and only provide this version of this book at this site to make it available to even more readers. We believe that cataloging plays a big part in finding valuable books and try to facilitate that, through our TFIC group efforts. In some cases, the original sources are no longer online or are very hard to access, or marked up in or provided in Indian languages, rather than the more widely used English language. TFIC tries to address these needs too. Our intent is to aid all these repositories and digitization projects and is in no way to undercut them. For more information about our mission and our fair use guidelines, please visit our website.

Note that we provide this book and others because, to the best of our knowledge, they are in the public domain, in our jurisdiction. However, before downloading and using it, you must verify that it is legal for you, in your jurisdiction, to access and use this copy of the book. Please do not download this book in error. We may not be held responsible for any copyright or other legal violations. Placing this notice in the front of every book, serves to both alert you, and to relieve us of any responsibility.

If you are the intellectual property owner of this or any other book in our collection, please email us, if you have any objections to how we present or provide this book here, or to our providing this book at all. We shall work with you immediately.

-The TFIC Team.

प्राचीन जैन-इतिहास

(प्रथम भाग)

लेखक-

श्री सूरजमल जैन।

प्रकाशकः-

मूलचन्द किसनदास कापड़िया-सूरत।

द्वितीयावृत्ति] वीर संवत् २४४८ [प्रति १२००

मूल्य बारह आने।

मुद्रक:-

मूलचन्द किसनदास कापड़िया।

"जैन विजय" प्रि० प्रेस-सूरत।

प्रकाशक-

मूलचन्द किसनदास कापड़िया,

दि० जैन पुस्तकालय-सूरत

प्रथमावृत्तिकी भूमिका।

जैन समाजमें जबसे शिक्षा प्रचारका प्रश्न उठा है, तभीसे जैन धर्म संबंधी पाठ्य पुस्तकोंका भी प्रश्न चालू है। जैन धर्म संबंधी पाठ्य पुस्तकोंके लिये कई सभाओंने कई बार प्रस्ताव किये, कमेटियाँ बनाई पर अंतमें कुछ भी फल नहीं हुआ। इन्हीं पाठ्य पुस्तकोंमें जैन इतिहास संबंधी पुस्तक भी गर्भित थी। बंबई परीक्षालयके पठनक्रममें जैन इतिहास रखा गया था और अब भी है। परीक्षालय द्वारा प्रकाशित पठनक्रम पत्रमें लिखा है कि इन पुस्तकोंके बनवानेका प्रयत्न किया जा रहा है। इस क्रमको प्रकाशित हुए कई वर्ष हो गये पर वह प्रयत्न अबतक सफल नहीं हुआ। जैन समाजमें ऐसी इतिहास संबंधी पुस्तककी, जिसमें हमारा प्राचीन इतिहास संग्रह हो, और वह संग्रह प्रथमानुयोगके ग्रंथों द्वारा किया गया हो, बड़ी आवश्यकता थी। उस आवश्यकताको ध्यानमें रख मैंने प्रयत्न किया और हर्ष है कि आज मैं अपने उस प्रयत्नको पाठकोंके सन्मुख रखनेमें समर्थ हुआ हूँ। मैं न इतिहासज्ञ हू और न लेखक, पर जैनधर्म और जैनसमाजका एक तुच्छ सेवक अवश्य हूं उसी सेवकके नातेके जोशमें आकर मैंने यह कार्य किया है। आशा है कि समाज इसे अपनायगी। जहां तक हो सका है इसमें मैंने उन सब बातोंके संग्रह करनेका प्रयत्न किया है जिन्हें इतिहासज्ञ चाहते हैं। साथमें विद्यार्थियोंके भी उपयोगी बनानेका ध्यान रखा है।

यद्यपि अभी यह प्रयत्न, संभव है कि बहुत त्रुटियोंसे भरा हो, पर आगामी इसके द्वारा कोई विद्वान् संपूर्ण त्रुटियोंसे रहित प्रयत्न कर सकेंगे यही समझकर मैं इसे पाठकोंके भेट करता हूं। मेरी इच्छा थी कि मैं इस पुस्तककी भूमिका समालोचनात्मक और तुलनात्मक पद्धतिसे लिखूं, पर इतिहास संबंधमें अपनी अल्पज्ञताको ध्यानमें लाकर यह कार्य किसी अन्य विद्वान्पर छोड़ता हुआ भूमिका समाप्त करता हूं। लेखक।

द्वितीयावृत्तिका निवेदन।

हर्ष है कि इस ग्रंथकी द्वितियावृत्तिका सुयोग प्राप्त हुआ है। जैन समाजने इस ग्रंथको अच्छी तरह अपनाया है इसके लिये मैं समाजका आभारी हूं। यह ग्रंथ प्रायः सम्पूर्ण जैन संस्थाओंमें पढ़ाया जाता है। जिन संस्थाओंमें नहीं पढ़ाया जाता हो उन्हें भी यह ग्रन्थ अपने पठनक्रममें रखना उचित है, जिससे कि विद्यार्थी संक्षिप्तमें अपने धर्मके और समाजके प्राचीन गौरवको जान सकें।

अन्तमें हम श्रीयुत मूलचंदजी किसनदास कापडियाको धन्यवाद देते हैं जिनके कि उत्साहसे यह द्वितीयावृत्ति प्रकाशित हो रही है।

निवेदन ।

हमारे जैन इतिहासके नायक, प्रसिद्ध प्रसिद्ध पुरुषों (तीर्थंकर, चक्रवर्ति, नारायण आदि) के जीवनमें प्रायः कई घटनाएँ ऐसी हुई है जो एक दूसरेके समान थीं। जैसे कि तीर्थंकरोंके पंचकल्याणक। ये पांचों कल्याणक सब तीर्थंकरोंके समान हुए थे। इसी तरह चक्रवर्तियोंकी दिग्विजय यह भी सब चक्रवर्तियोंने समान की है। इन समान घटनाओंको हरएकके वर्णनमें दिखानेसे पुस्तक बढ़ जाने और पाठकों व विद्यार्थियोंकी अरुचि हो जानेका भय था अतएव एक एक पुरुषके चरित्रमें इन समान घटनाओंका वर्णन कर दिया है और अंतमें एक परिशिष्ट लगा दिया है जिसमें प्रत्येक समान घटनावाले पुरुषोंकी समान घटनाओंका खुलासा वर्णन दे दिया है। पाठकगण उस परिशिष्टको ध्यानमें रख कर पुस्तकका पाठ करें, और अध्यापकोंको चाहिये कि पहिले उस परिशिष्ट (ड) को पढ़ाकर फिर पुस्तकका पढ़ाना प्रारम्भ करें।

सूचना।

(१) इस पुस्तकमें जहा माइलका वर्णन आया है वहा दो हजार वारका माइल समझना चाहिये। जैनधर्मानुसार एक कोश चार हजार वारका होता है इसलिये एक माइल दो हजार वारका हुआ। वर्तमानमें एक माइल १७६० वारका होता है।

[२] एक पूर्वांग चोरासी लाख वर्षका समझना चाहिये।

(३) पूर्वांगका वर्ग एक पूर्व होता है।

लेखक।

विषयसूची।

विषय	पृष्ठ संख्या
१ भूमिका	
२ निवेदन	
३ सूचना	
४ विषय सूची	
पाठ पहिला—५ जैन भूगोलमें भारतवर्षका स्थान....	२
पाठ दूसरा—६ जैनधर्मानुसार पृथ्वीके इतिहासके प्रारंभका समय	४
पाठ तीसरा—७ भरतक्षेत्रमें समय परिवर्तनके नियम	११
पाठ चौथा—८ इतिहासके प्रारंभका समय और चौदह कुलकर	१७
पाठ पाँचवाँ—९ चौदहवें कुलकर महाराजा नाभिराय और कर्मभूमिका प्रारंभ	२१
पाठ छठवाँ—१० युगादि पुरुष भगवान् ऋषभ	२६
पाठ सातवाँ—११ भरत चक्रवर्ती	४९
पाठ आठवाँ—१२ युवराज बाहुबली (प्रथम कामदेव)	६८
पाठ नौवाँ—१३ महाराज जयकुमार और महारानी सुलोचना..	७०
पाठ दशवाँ—१४ ऋषभ युगके अन्य महापुरुष और स्त्रियाँ...	७४

विषय	पृष्ठ संख्या
पाठ ग्यारहवाँ—१५ ऋषभ युगकी स्फुट बातें....	७९
पाठ बारहवाँ—१६ भगवान् अजितनाथ	८०
पाठ तेरहवाँ—१७ द्वितीय चक्रवर्ती सगर और महाराज भागीरथ...	८३
पाठ चौदहवाँ—१८ तृतीय तीर्थंकर श्रीसंभवनाथ..	८७
पाठ पंद्रहवाँ—१९ अभिनंदन स्वामी...	९०
पाठ सोलहवाँ—२० पांचवें तीर्थंकर श्री सुमतिनाथ	९२
पाठ सत्रहवाँ—२१ पद्मप्रभु	९४
पाठ अठारहवाँ—२२ सुपार्श्वनाथ	९७
पाठ उगनीसवाँ—२३ चन्द्रप्रभु	१००
पाठ वीसवाँ—२४ भगवान् पुष्पदंत....	१०३
पाठ इकवीसवाँ—२५ भगवान शीतलनाथ	१०५
पाठ बावीसवाँ—२६ भगवान् श्रेयांसनाथ	१०८
पाठ तेवीसवाँ—२७ प्रथम प्रतिनारायण अश्वग्रीव	११०
पाठ चौवीसवाँ—२८ नारायण तृपृष्ठ और बलदेव-विजय	११२
पाठ पच्चवीसवाँ—२९ तीर्थंकर वासुपूज्य	११४
पाठ छव्वीसवाँ—३० द्वितीय प्रतिनारायण-तारक	११६
पाठ सत्तावीसवाँ—३१ नारायण-द्विपृष्ठ और बलदेव-अचल	११७
३२ तीन लोकका चित्र	परिशिष्ट "क"
३३ जंबूद्वीपका चित्र .. .. ,,	"ख"

विषय	पृष्ठ संख्या
३४ वर्तमान भारतवर्षका चित्र .... „	"ग"
(परिशिष्ट "घ") ३५ समवशरणकी रचना	११८
(परिशिष्ट "ङ") ३६ तीर्थंकरोंकी समान जीवन घटनायें	१२१
(परिशिष्ट "ङ" २) ३७ चक्रवर्ती—नारायण, प्रति-नारायण आदिके जीवनकी समान घटनायें	१२९
(परिशिष्ट 'च") ३८ तीर्थंकरोंके चिन्ह	१३२
३९ मानस्तंभका चित्र	परिशिष्ट "छ"
(परिशिष्ठ "ज") ४० पुराणकारोंमें परस्पर मतं भेद	१३३
(परिशिष्ठ 'झ") ४१ विद्याधर	१३६

जंबू द्वीपका नकसा

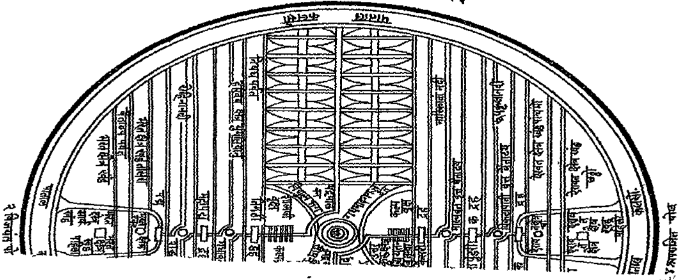

निषध पर्वत
हरिवर्ष क्षेत्र युगलियांनु
रोहितानदी
भरत क्षेत्र खंड तीसरो
वैताढ्य पर्वत
भरत क्षेत्र खंड
पाताल
२ विजयंत पोल

भागोंमेंसे पांच भाग म्लेच्छखंड और एक आर्यक्षेत्र अथवा आर्यखंड कहलाता है। ऊपरके नकशेमें यह आर्यखंड "ट" के चिन्हसे दिखाया गया है अर्थात् यदि हम भरतक्षेत्रके नकशेमेंसे आर्यखंड निकालें तो इस आर्यखंडका आकार इस भांति होगा।

वर्तमानमें केवल हिंदुस्थान ही आर्यखंड माना जाता है। परन्तु जैन भूगोल हिंदुस्थान, एशिया, यूरोप आदि वर्तमानके छहों महाद्वीपोंको आर्यखंडहीमें शामिल करती है। और इन छहों द्वीपोंके सिवाय और भी पृथ्वी बतलाती है जिसका पता हम लोगोंको अभीतक नहीं लगा है। इस पुस्तकमें इसी आर्यखंडके इतिहासका जैन-दृष्टिसे विवेचन किया जायगा। वर्तमानमें आर्यखंड जिस प्रकारका माना गया है उसका भी नकशा इस पुस्तकके परिशिष्ट नं. "ग" में दिया गया है।

पाठ दूसरा ।

जैनधर्मानुसार पृथ्वीके इतिहासके प्रारंभका समय ।

वर्तमानके इतिहासकारोंका कहना है कि पहिले हिंदुस्थानमें अनार्य जातियॉ बसती थीं । पीछे फारस आदि अन्य देशोंसे आर्य जातियॉ हिंदुस्थानमें आईं । पहिले पहिल कौनसी जाति, कहांसे और किस समय हिंदुस्थानमें आई इस बातका पता ये लोग अभी तक नहीं लगा सके हैं । पर इनका कहना है कि सबसे पिछली आर्य जाति क्राइस्टके पंद्रहसो वर्ष पहिले आई थी । और कई तो इस समयसे भी पहिले आना मानते हैं । इन लोगोंके कहनेके अनुसार हिन्दुस्थानमें जो अनार्य जातियां थीं वे कोल और द्राविड इन दो बड़े कुलोंमेंसे थीं । इनमेंसे कोल जाति चौपाये नहीं पालती थी । मांस खाती थी । अपने पितरों और भूतोंकी पूजा करती थी । भारतवर्षमें आनेवाली जातियोंमें बहुतसे कोल इस तरहसे मिल गये हैं कि अब उनका पहिचानना कठिनसा है । वर्तमानमें कोलोंकी बारह जातियॉ और उनकी तीस लाख मनुष्य संख्या है । द्राविड़ जाति भी करीब करीब इसी प्रकारकी थी । परन्तु उसमें सभ्यता अधिक थी । अभी तक इतिहासकार द्राविड़ोंकी सभ्यताको जितनी प्राचीन समझते थे, अब थोड़े दिनोंसे उससे भी अधिक प्राचीन समझने लगे हैं । इन लोगोंका कहना है कि पहिले तो ये लोग आर्य जातियोंसे लड़े, पर पीछे दोनों जातियां हिल मिल

गई और उनसे संतान उत्पन्न हुई। आई हुई आर्य जातियोंके सम्बन्धमें वर्तमान इतिहासकारोंके सिद्धांत इस भांति हैं:—

(१) प्राचीन कालमें इस जाति और कुलके मनुष्य मध्य एशियाके पश्चिम भागमें अर्थात् तुर्किस्तानमें और यूरोपके पूर्वसमतल भूमिमें रहते थे। ये लंबे, गोरे और सुन्दर थे।

(२) ये लोग गावों और बस्तियोंमें रहते तथा पशुओंको—जैसे भेड़, गाय, बैल आदिको पालते थे और खेती करते, सूत कातते, कपड़े बनाते, रांगा व तांबा गलाकर अस्त्र शस्त्र बनाया करते थे।

(३) इन लोगोंकी मनुष्य संख्या बढ़ते बढ़ते इतनी अधिक हो गई कि उक्त स्थानोंमें ये लोग समा न सके तथा वहांकी भूमिकी उपजाऊ शक्ति भी घट गई अतः ये लोग अपने देशसे निकल पड़े। इन निकले हुए लोगोंमेंसे कितनी ही जातियाँ पश्चिमकी ओर और कितनी ही जातियाँ वहांके पूर्व निवासियोंमें हिलमिल गईं। इन पश्चिमकी मिलीजुली जातियोंकी ही संतान अंग्रेज, फ्रांस, जर्मन, व यूरोपके अन्य लोग हैं। दक्षिणको आई हुई जातियोंमेंसे कुछ जातियां हिन्दुस्थानमें आगई। और ये ही भारतवर्षकी आर्यजातियाँ कहलाईं।

(४) जो लोग यहाँपर आये थे वे पढ़े लिखे न थे परन्तु अपने अपने देवताओंके भजन गाया करते थे। पढ़े लिखे न होनेसे ये अपना कुछ हाल नहीं लिख गये हैं। परन्तु जो वे भजन गाया करते थे उनसे आर्यजातियोंकी बहुत कुछ स्थिति मालूम होती है। इन भजनोंके संग्रह ही वेद हैं।

(५) इतिहासकारोंने लिखा है कि इन आर्य लोगोंका स्वभाव सरल और शान्त था।

(६) ये लोग बहुत दिनों तक पंजाबकी नदियोंके किनारे किनारे बसे रहे। ये लोग विशेष गेंहू और जौकी खेती करते थे। हिन्दुस्थानमें आनेके पहिले अग्निकी पूजा किया करते थे फिर यहांपर आकर वर्षासे खेतीकी उपज होना देखा तो इन्द्रकी भी पूजा करने लगे। फिर यम, सूर्य, वरुण, रुद्र, प्रातःकाल आदिकी भी पूजा करने लगे।

(७) जब आर्य पंजाबमें आये तब पहिले तो द्राविड़, कोल आदि जातियोंसे लड़े, पर पीछेसे उनमें मिल गये और दोनोंके द्वारा संतान-वृद्धि होने लगी। इन लोगोंमें छुआछूत नहीं थी।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण आर्य लोगोंने माने हैं। इन वर्णोंकी स्थापनाके विषयमें वर्तमानके इतिहासकार इस प्रकार अपना मत देते हैं:—

(१) उक्त आर्यजातियोंकी व्यक्तियां अपने अपने घरेलू कार्योंमें व्यस्त रहनेके कारण देवताओंकी स्तुति पठ नहीं कर सकतीं थीं अतएव प्रत्येक जातिमेंसे कुछ कुछ घरोंको यह काम करनेके लिये नियत कर दिया। पीछेसे ये ही घर ब्राह्मण वर्णके कहलाये।

(२) इसी तरह हर जातिमेंसे हट्टे कट्टे लड़ाकू घरोंको लड़ाईके लिये नियत कर दिया। ये लोग क्षत्रिय वर्णके कहलाये।

(३) जो लोग व्यापार करते, खेती करते, पशु पालन करते थे वे लोग वैश्य कहलाते थे।

(४) इन तीनोंसे नीचेके मनुष्य शूद्र वर्णके कहलाये। इन लोगोंकी संख्या पहिलेके तीनों वर्णोंसे बहुत ज्यादह थी। इन लोगोंने भी अपना दल बांधा था। और इसलिये प्राचीन भारतमें बहुतसे शूद्र राजा हो गये हैं।

इस प्रकार भारतमें वर्णोंकी स्थापना हुई इसके कोई तीन हजार वर्ष बाद हिन्दुओंकी समाजका गठन हुआ। इसी समय बड़े बड़े नगर और मंदिर बनाये गये। नये नये देवताओंकी पूजा होने लगी। फिर नगर, देश और धन्धेके ऊपरसे जातियाँ बनाई गई जिससे कि भारतमें हजारों जातियाँ हो गईं।

वर्तमान इतिहासकारोंका प्राचीन भारतके बारेमें यही अनुमान है और यह अनुमान वेदोंपरसे किया गया है। पूर्व समयका इतिहास जाननेके लिये इन लोगोंके पास और कोई साधन नहीं हैं और जो कुछ अनुमान किया गया है वह भी निश्चित नहीं हुआ है। इसमें इन्हीं इतिहासकारोंको बहुतसी शंकायें हैं जो कि हल नहीं हो सकी हैं। बहुतसे इतिहासकार पृथ्वीके इतिहासका प्रारम्भ चार या पांच हजार वर्षसे मानते हैं। लोकमान्य बालगंगाधर तिलकके मतसे दश हजार वर्षसे इतिहासका प्रारम्भ होता है। और मि० नारायण भवनराव पावगी पूनानिवासीने अभी जो "आर्यनक्रेडल इन दी सप्तसिंधुज" नामक पुस्तक लिखी है उसमें लिखा है कि आर्य जातिया विदेशोंसे न आकर यहीं सरस्वती नदी आदिके पास उत्पन्न हुईं और उसे लाख पचास हजार वर्षसे कम नहीं हुए।

वर्तमान इतिहासकारोंके विचारसे भारतवर्षके इतिहासका प्रारम्भ समय ऊपर बतला चुके हैं। परन्तु जैन इतिहास इसके विरुद्ध है। वह इस थोड़ेसे समयसे ही भारतके इतिहासका प्रारम्भ नहीं मानता। उसके अनुसार इतिहासके प्रारम्भका समय इतना प्राचीन है कि जिसकी गणना हम हमारे गिनतीके अक्षरोंसे नहीं कर सकते। यह बात आगेके पाठोंमें साफ तौरसे बताई जायगी। यहांपर, वर्तमानके इतिहासकारोंने भारतके इतिहासके प्रारम्भका समय जो करीब चारसे पांच हजार वर्ष पूर्वका माना है जैन धर्मानुसार उससे भी प्राचीन सिद्ध करने लिये नीचे लिखे हुए प्रमाण दिये जाते हैं —

(१) जैन धर्मानुसार मध्य एशियाका पश्चिम भाग व यूरोपकी पूर्व समतल भूमि जहांपर कि पहिले आर्य लोग रहते थे आर्यखण्ड होने हैं। अतएव उनका दूसरे देशोंमें अर्थात् आर्य देशके सिवाय अन्य देशसे आना नहीं कहलाया जा सकता।

(२) जैनधर्मने जो यह माना है कि वर्तमान हिन्दुस्थान ही नहीं किंतु यूरोपादि छहों द्वीप आर्य खंडमें हैं सो जैन धर्मका मानना इस लिये और ठीक मालूम होता है कि वर्तमानके इतिहासकार जब मध्य एशियाके पश्चिम भाग व यूरोपके पूर्व भागसे आर्यजातियोंका आना यहां बतलाते हैं तो उक्त देश भी आर्यजातियोंके रहनेके स्थान होनेके कारण आर्यखंड मानने पड़ेंगे क्योंकि आर्योंके रहनेका स्थान ही आर्यखंड कहलाता है।

(३) कई विद्वानोंने वेदोंको गौरव-दृष्टिसे स्मरण किया है। इतिहासके प्रारंभ कालमें ही कोई भी ग्रंथ वेदोंके समान सगठित

नहीं हो सकते और ऐसी अवस्थामें जब कि लोग अनपढ़ बताये जाते हैं। इससे मालूम होता है कि न तो उस समयके मनुष्य ही अनपढ़ थे और न वह समय ही आर्य जातिके इतिहासके प्रारंभका था किंतु इस समयसे भी क्रोडों वर्षों पहिलेसे आर्य जातिका इतिहास चला आता होगा।

(४) किसी जातिको रंगमें काले होने हीके कारण अनार्य नहीं कह सकते। अतएव द्राविड़ जाति भी केवल इसी लिये अनार्य नहीं कहला सकती। और न इसके ही लिये कोई काफी प्रमाण है, कि द्राविड, कोल, मंगोल आदि जंगली जातियोंके सिवाय भारतवर्षमें और कोई सभ्य जाति थी ही नहीं।

(५) जैन धर्मानुसार वर्तमान इतिहासकारोंके अनुमान पर यदि हम विचार करें तो एक प्रकारसे इतिहासकारोंका यह अनुमान सत्य सिद्ध करनेमें जैनधर्म बहुत कुछ सहायता देगा क्योंकि जैन धर्मके बावीसवें तीर्थंकर भगवान् नेमिनाथके मोक्ष जानेके पोनेचोरासी हजार वर्षोंके बाद भगवान् पार्श्वनाथके जन्म होने तक धर्मका मार्ग बिलकुल बंद हो गया था अर्थात् उस समयकी प्रजा धर्ममार्गसे रहित थी और धर्म मार्गसे रहित होना ही चारित्र हीनता–अनार्यता–जंगलीपनका कारण है। अतएव जिस समयका अनुमान हमारे इतिहासकार करते हैं वह समय यही होगा। और धर्ममार्गसे रहित होनेके कारण उस समयके मनुष्योंको इतिहासकारोंने अनार्य समझा होगा परन्तु यह तो किसी तरह भी सिद्ध नहीं हो सका है कि जिन लोगोंको ये

भारतके आदिम निवासी और अनार्य मानते हैं उनसे पहिले भारतमें आर्यत्व था ही नहीं इसी लिये जैन धर्म इस बातके माननेके लिये तैयार नहीं है कि भारतवर्षकी आर्यजातिके इतिहासका प्रारंभ इसी समयसे हुआ है। किंतु यह समय परिवर्तनका था जिसमें धर्म मार्गका लोप हो गया था और मनुष्य प्रायः अधर्ममार्गकी ओर रजू हो गये थे।

(६) यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि इस दुनियाँको बनानेवाला कोई नहीं है। जब दुनियांको किसीने नहीं बनाया तो दुनियाँ अनादि है और उसके अनादि होनेसे इतिहास भी अनादि है। परन्तु परिवर्तन—सदा हुआ करता है, यह प्राकृतिक नियम है, औ परिवर्तनके अनुसार दुनियाँका इतिहास भी बदलता रहता है। यहाँपर देखना यह है कि भरतक्षेत्रके जिस इतिहासके प्रारंभका हम पता लगा रहे हैं उसका प्रारंभ इस क्षेत्रके किस परिवर्तनसे प्रारंभ हुआ है। ऊपर हम यह बतला चुके हैं कि इतिहासके प्रारंभका समय इतना प्राचीन है कि जिसे हम गिनतीके अक्षरोंसे नहीं गिन सकते।

परंतु इतने प्राचीन समयको कल्पनामें हम अवश्य ला सकते हैं। अतएव उस प्राचीन समयको समझनेके लिये यहांपर यह बतला देना उचित है कि अनादि सृष्टिमें किस तरहसे परिवर्तन हुआ करता है और किस प्रकार इतिहासका प्रारंभ होता है।

पाठ ३ रा।

भरतक्षेत्रमें समय परिवर्तनके नियम।

सृष्टि अनादि है। इसका कर्ता हर्ता कोई नहीं है। परंतु इसमें जो परिवर्तन हुआ करते हैं उनकी आदि और उनका अंत दोनों होते हैं। भरतक्षेत्र भी सृष्टिका एक अंग है। इसमें भी उक्त नियम लागू होता है। यहाँपर यही बतलाया जाता है कि भरतक्षेत्रमें समयका परिवर्तन कैसे हुआ करता है। भरतक्षेत्रमें परिवर्तन दो प्रकारसे होता है। एक विकाशरूपसे-उन्नतिरूपसे, दूसरा अवनतिरूपसे; पहिलेको जैनधर्म उत्सर्पिणी कहता है, दूसरेको अवसर्पिणी। अर्थात् पहिला परिवर्तन जब प्रारंभ होता है तब तो क्रमसे-धीरे धीरे उन्नति होती जाती है। इस उन्नतिकी भी सीमा है, उस सीमा तक-हद्द तक पहुँचजानेपर फिर अवनतिका प्रारंभ होता है और वह भी जब अपनी सीमाको पहुँच जाती है तब फिर उन्नति शुरू होती है। इस प्रकार उन्नतिसे अवनति और अवनतिसे उन्नतिका परिवर्तन हुआ करता है। उन्नति और अवनति जो मानी गई है वह समूह रूपसे मानी गई है। व्यक्ति रूपसे नहीं। उन्नतिके समयमें व्यक्तिगत अवनति भी हुआ करती है और अवनतिके समयमे व्यक्तिगत उन्नति भी होती है और विशेषकर उन्नति अवनति जैनधर्म जड़ पदार्थोंकी उन्नति-अवनतिसे नहीं मानता किंतु आत्माकी उन्नति और अवनतिसे मानता है। परिवर्तन इस भांति हुआ करते हैं:—

(१) प्रत्येक परिवर्तन दश कोड़ा कोड़ी सागरका होता है (हम सागरोंकी गिनती अङ्कोंसे नहीं कर सकते अतएव यह संख्या असंख्यात है।)

(१) प्रत्येक परिवर्तनके छह हिस्से होते हैं।

(२) अवनतिके परिवर्तनके पहिले हिस्सेका नाम **सुःषमासुःषमा** होता है। यह समय चार कोड़ाकोड़ी सागरका होता है। इस समयके मनुष्योंकी आयु तीन पल्यकी होती है। शरीरकी ऊंचाई चौबीस हजार हाथोंकी होती है। ये मनुष्य बड़े ही सुंदर और सरल-चित्तके होते हैं। इन्हें भोजनकी इच्छा तीन दिन बाद होती है। और इच्छा होते ही कल्पवृक्षोंसे प्राप्त दिव्य भोजन जो कि बेर (फल) के बराबर होता है, करते हैं। इनको मल, मूत्रकी बाधा व बीमारी आदि नहीं होती। स्त्री और पुरुष दोनों एक साथ एक ही उदरसे उत्पन्न होते हैं और बड़े होनेपर पति, पत्नीके समान व्यवहार भी करते हैं। परंतु उस समय भाई बहिनके भावकी कल्पना न होनेसे दोष नहीं समझा जाता। वस्त्र, आभूषण आदि भोगोपभोगकी सामग्री इन्हें कल्पवृक्षोंसे प्राप्त होती है। कल्पवृक्ष पृथ्वीके परमाणुओंके होते हैं। वनस्पतिकी जातिके नहीं होते। इनके दश भेद होते हैं। और दशों तरहके वृक्षोंसे मनुष्योंको भोगोपभोगकी सामग्री जैसे—वस्त्र,

---

१ एक पल्य ४१३४५२६३०३०८२०३१७७७४९५१२१९२०००००००००००००००००० वर्षका होता है। पल्यकी संख्याको एक करोड़ १०००००००००००००००० से गुणा करनेसे एक सागरकी संख्या होती है। और एक करोड़का वर्ग कोड़ाकोड़ी कहलाता है।

आभूषण, भोजन आदि प्राप्त होते रहते हैं। इनके यहां संतान (सिर्फ एक पुत्र और एक पुत्री एक साथ) उत्पन्न होते ही मातापिता दोनो मर जाते हैं। बालक स्वय अपने अँगूठोंको चूस चूसकर उनपचास दिनोंमें ज़वान हो जाते हैं। स्त्री, पुरुष दोनों साथ मरते हैं और मरते समय स्त्रीको छींक और पुरुषको जँभाई आती है। शरीरकी ऊँचाई व मनुष्यकी आयु क्रमश. घटती जाती है।

(४) अवनतिके परिवर्तनके दूसरे हिस्सेका नाम **सुःषमा** है। यह तीन कोड़कोड़ी सागरका होता है। इसमें पहिले हिस्सेसे शरीरकी ऊँचाई आदि घट जाती है। इस कालके मनुष्योंकी ऊँचाई सोलह हजार हाथ और आयु दो पल्यकी होती है। यह भी क्रमशः घटती जाती है। इतनी ऊँचाई व आयु इस हिस्सेके प्रारंभमें होती है। इस कालके भी मनुष्य बहुत सुदर होते हैं। और भोजन आदि भोगोपभोगके पदार्थ कल्पवृक्षोंसे पाते है। इन दोनों (पहिले व दूसरे) हिस्सोंमें कोई राजा महाराजा नहीं होता। सूर्य और चंद्रमाका प्रकाश भी कल्पवृक्षोंके कारण प्रगट नहीं रहता। सिंहादि क्रूर जंतुओंका भी स्वभाव शांत रहता है।

(५) तीसरे हिस्सेका नाम **सुःषमादुःषमा** है। यह दो कोड़ाकोड़ी सागरका होता है। इस समयके मनुष्योंकी आयु एक पल्यकी और ऊँचाई एक कोशकी (४००० बारकी) होती है। इस समयके मनुष्य एक दिन बाद भोजन करते हैं। और वह भोजन भी आँवलेके बराबर। अवनतिका परिवर्तन होनेके कारण सब बातोंकी घटती होती जाती है। यद्यपि इतिहासका प्रारंभ

उन्नति और अवनतिके पहिले हिस्सेके प्रारंभसे ही होता है परन्तु प्रकृत इतिहासका प्रारंभ तीसरे हिस्सेके आखिरी भागसे ही होता है। क्योंकि इतने समय तकके मनुष्य बिना परिश्रमके कल्पवृक्षों द्वारा प्राप्त पदार्थोंका ही भोग करते रहते हैं। और कोई धर्म, कर्म भी नहीं रहते जिससे कि मनुष्योंकी जीवन-घटनाओंमें परिवर्तन हो। अतः प्रकृत इतिहास तीसरे भागके पीछले हिस्सेसे ही प्रारंभ होता है। इसी अंतिम समयमें कुलकरोंकी–मनुओंकी उत्पत्ति होती है। कुलकरोंकी उत्पत्ति होनेके पहिले मनुष्योंका कोई नाम नहीं होता। स्त्रियॉ पुरुषोंको आर्य और पुरुष स्त्रियोंको आर्ये कहा करते हैं। और इस समयमें कोई वर्णभेद भी नहीं होता, सब एकसे होते हैं।

(६) चौथा हिस्सा ब्यालीस हजार वर्ष कम एक हजार कोडाकोड़ी सागर समयका होता है। इसके प्रारंभमें मनुष्योंकी आयु ८४ लाख पूर्वकी होती है। और शरीरकी ऊंचाई २२०० हाथकी होती है। अंतमें जाकर मनुष्य-शरीरकी ऊँचाई अधिकसे अधिक ७ हाथकी रह जाती है। यह समय कर्मभूमिका कहलाता है। क्योंकि इस समयके मनुष्योंको जीवन चलानेके लिये व्यवहारिक कार्य करने होते हैं। राज्य, व्यापार, धर्म, विवाह आदि कार्य इसी हिस्सेके प्रारंभसे होने लगते हैं। इसी हिस्सेमें जीवन चलानेके अन्यान्य साधनोंकी उन्नतिका प्रारम्भ होता है। यह उन्नति–जीवन निर्वाहके जड़ साधनोंकी उन्नति–तो बराबर होती जाती है परंतु आत्मज्ञान, अध्यात्मविद्या, सरलता आदि उच्च भावोंकी कमी होती जाती है। इसी हिस्सेमें चौबीस महापुरुष उत्पन्न होते हैं जो अपने ज्ञानसे सत् धर्मका प्रकाश करते हैं।

(९) अवनति काल पूरा हो जानेपर (अवसर्पिणी काल पूरा हो जानेपर) उन्नति रूप परिवर्तनका प्रारंभ होता है। इसके भी छह भाग होते हैं। इसके पहिले भागका नाम दु:षमादु:षमा, दूसरा दु:षमा, तीसरा सुषमादु:षमा, चौथा दु:षमासुषमा, पांचवां सुषमा और छठवां सुषमासुषमा होता है। इनसे क्रमश आयु काय सुःख दु:ख उसी तरह बढ़ते जाते हैं जिस तरह अवनति कालमें घटते थे। अवनति कालके छठवें भागमें जैसा कुछ समय रहता है वही उन्नतिके पहिले भागमें होता है और पहिले भागमें जो होता है वह उन्नतिके छटवें भागमें होता है।

इस प्रकार आर्यखण्डमें समयका परिवर्त्तन होता है। वर्तमान समय अवनति रूप परिवर्तनका पांचवाँ हिस्सा है-पंचम काल है। इसके पहिले चार काल और पूरे हो चुके हैं। यह बताया जा चुका है कि यों तो इतिहासकी शुरू प्रत्येक परिवर्तनके प्रारंभसे ही होती है परन्तु तीसरे कालके अंतमें जब एक पल्य शेष रहता है तब उस पल्यके आठ भागोंमेंसे सात भागोंके पूरे होने तक तो मनुष्योंके जीवन निर्वाहके लिये कोई व्यापारादि कृत्य, समाज-संगठन व राज्य-संगठनकी आवश्यकता न होनेके कारण उस समयका इतिहास नहीं कहला सकता। प्रकृत इतिहासका प्रारंभ तीसरे भागके अंतिम पल्यके अंतिम हिस्से-आठवें हिस्सेसे होता है यही आर्यखंडके इतिहासका प्रारंभिक काल है। आगेके पाठोंमें यहींसे इतिहासका प्रारंभ किया जायगा।

परिशिष्ट "क"

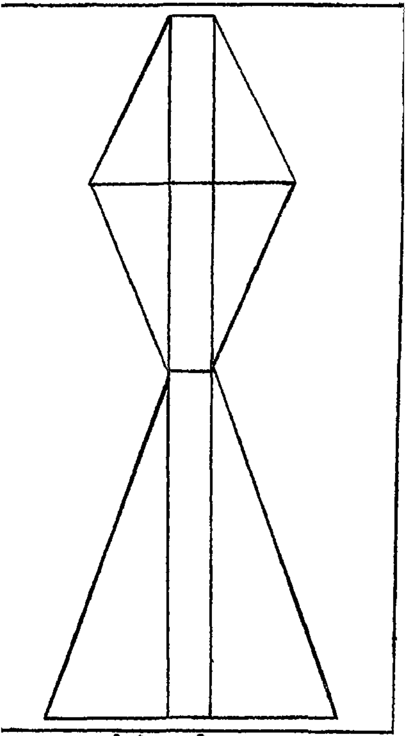

तीन लोक का चित्र.

पाठ चौथा।

इतिहासके प्रारंभका समय और चौदह कुलकर (मनु).

(१) जब तीसरे कालमेंसे—अवनतिके तीसरे हिस्सेमेंसे एक पल्यका आठवाँ हिस्सा बाँकी रहा तब आषाढ सुदी पूनमके दिन सायंकालको सूर्य अस्त होता और प्रकाशमान चंद्रका उदय होता दिखाई दिया। यद्यपि चद्र सूर्य अनादि कालसे बराबर उदय अस्त होते रहते थे परन्तु इस दिन प्रकाश देनेवाले ज्योतिरग जातिके कल्पवृक्षोंका प्रकाश इतना क्षीण होगया था कि जिस प्रकाशकी तीव्रतासे सूर्य और चद्र दिखाई नहीं देते थे, वे दिखाई देने लगे। इनको देखकर उस समयके मनुष्य बहुत डरे और उन सबमें जो अधिक प्रतापशाली तथा सृष्टि परिवर्तनके नियमोंको जाननेवाले प्रतिश्रुति नामक पुरुष थे उनके पास जाकर अपने भयका हाल कहा। उन्होंने आगत मनुष्योंको समझाया कि चद्र सूर्यसे डरनेका कोई कारण नहीं है। और भविष्यमें जीवनका निर्वाह किस प्रकारसे होगा और कैसा व्यवहार होगा, यह भी बताया। प्रतिश्रुतिके इस प्रकारसे बोध देनेसे डरे हुए मनुष्योंको शांति हुई। यही प्रतिश्रुति पहिले कुलकर—मनु—थे। इन्हींके समयसे इतिहासका प्रारंभ हुआ।

(२) इनके असंख्यात करोडों वर्ष बाद सन्मति नामके दूसरे कुलकर उत्पन्न हुए। इनके समयमें ज्योतिरंग नामके कल्पवृक्षोंका प्रकाश इतना कम हो गया था कि उसके प्रकाशसे तारागणों और नक्षत्रोंका प्रकाश भी नहीं दब सका और वे प्रगट हुए। इन्हें

देखकर उस समयके मनुष्योंने फिर भय खाया और कुलकरके पास आये। इन्होंने उन्हें समझाया। तथा ज्योतिश्चक्र (सूर्य, चन्द्र, ग्रह नक्षत्र आदिका समूह ज्योतिश्चक्र कहलाता है) का सब हाल और रात्रि, दिन, सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहण, सूर्यका उत्तरायण दक्षिणायन होना आदिका भेद बतलाकर ज्योतिष विद्याकी प्रवृत्ति की।

(३) इनके भी असंख्यात करोडो वर्ष बाद क्षेमंकर नामके तीसरे कुलकर उत्पन्न हुए। अब तक सिंहादि क्रूर जन्तु शांत थे। पर इनके समयमें उनमें कुछ क्रूरता आई और वे मनुष्योंको तकलीफ देने लगे। पहिले मनुष्य इन पशुओंको साथ रखते थे। परंतु क्षेमंकरके आदेशसे अब उनसे न्यारे रहने लगे और उनका विश्वास करना छोड दिया।

(४) तीसरे कुलकरके असंख्यात करोड़ वर्षों बाद क्षेमंधर नामके चौथे मनु हुए। इनके समयमें सिंहादि जंतुओंकी क्रूरता और भी अधिक बढ गई और उसके लिये इन्होंने मनुष्योंको लाठी आदि रखनेका उपदेश दिया।

(५) चौथेके असंख्यात करोड़ वर्षों बाद पांचवे सीमंकर नामके मनु हुए। इनके समयमें कल्पवृक्ष बहुत कम हो गये थे और फल भी थोडा देने लगे थे अतएव मनुष्योंमें विवाद होने लगा। इन्होंने अपनी बुद्धिसे कल्पवृक्षोंकी हद बांध दी। और अपनी हदके अनुसार मनुष्य उनका उपयोग करने लगे।

(६) फिर असंख्यात करोड़ वर्षोंके पश्चात् सीमंधर मनु हुए। इनके समयमें कल्पवृक्षोंके लिये विवाद और भी अधिक बढ गया था। क्योंकि कल्पवृक्ष बहुत कुछ घट गये थे और फल भी बहुत

कम देने लगे थे, अतएव इन्होंने उस विवादको दूर किया और फिर नये प्रकारसे वृक्षोंकी हद बांधी।

(७) असंख्यात करोड़ वर्षोंके बाद फिर सातवें कुलकर **विमलवाहन** हुए। इन्होंने हाथी, घोडा, ऊँट, बैल आदि सवारी करने लायक पशुओं पर सवारी किस ढगसे करना, यह बताया।

(८) इनके असंख्यात करोड़ वर्षोंके बाद आठवें कुलकर **चक्षुष्मान** नामक हुए। इनके समयके पूर्व माता पिता अपनी संतानकी उत्पत्ति होनेके साथ ही मरण कर जाते थे पर इनके समयसे संतान उत्पन्न होनेके क्षण भर बाद मरने लगे। इन्होंने लोगोंको समझाया कि संतान क्यों होती है।

(९) फिर इनके असंख्यात करोड वर्षोंके बाद नौवें कुलकर **यशस्वान्** हुए। इनके समयमें माता पिता कुछ समय संतानके साथ ठहर कर फिर मरते थे। इन्होने संतानको आशीर्वादादि देनेकी विधि बताई। इनके सामने संतानका नाम रखा जाने लगा।

(१०) असंख्यात करोड वर्षों बाद दशवें मनु **अभिचन्द्र** नामके हुए। इनके समयमें प्रजा अपनी संतानके साथ क्रीडा करने लगी थी। इन्होंने क्रीडा करने व संतानपालनकी विधि बताई थी।

(११) इनके सेकडों वर्षों बाद **चंद्राभ** नामके ग्यारहवें कुलकर उत्पन्न हुए इनके समयमें प्रजा संतानके साथ पहिलेसे और अधिक दिनों तक रहकर फिर मरण करती थी।

(१२) फिर कुछ समय बाद बारहवें कुलकर मरुदेव नामके हुए। उस समयकी व्यवस्था सब इनके आधीन थी। इन्होंने जल मार्गमें गमन करनेके लिये छोटी बड़ी नाव चलानेका उपाय बताया। पहाड़ोंपर चढ़नेके लिये सीढ़ियाँ बनाना बताया। इन्हींके समयमें छोटी, बड़ी कई नदियाँ और उपसमुद्र उत्पन्न हुए। व मेघ भी न्यूनाधिक रीतिसे बरसने लगे। इस समय तक स्त्री और पुरुष दोनों युगल उत्पन्न होते थे।

(१३) फिर कुछ समय बाद तेरहवें कुलकर प्रसेनजित्त हुए। इन्होंके समयमें संतान जरायुसे ढकी उत्पन्न होने लगी। इन्होंने उसके फाड़नेका उपाय बताया। प्रसेनजित कुलकर अकेले ही उत्पन्न हुए थे इन्हके पिताने विवाहकी पद्धति प्रारंभ की।

(१४) इनके बाद चौदहवें कुलकर नाभिराय उत्पन्न हुए। इनका हाल आगेके एक स्वतंत्र पाठमें दिया जायगा।

(१५) इन कुलकरोंमेंसे किसीको अवधिज्ञान[1] होता था और किसीको जातिस्मरण[2] होता था प्रजाके जीवनका उपाय जाननेके कारण ये मनु कहलाते हैं। इन्होंने कई वंशोंकी स्थापना की अतः कुलकर कहलाते हैं। इन कुलकरोंने दोषी मनुष्योंको दंड देनेका विधान भी किया था और वह इस प्रकार था—

---

१ परिमित देश, क्षेत्र, काल और भाव संबंधी तीनों कालका जिससे ज्ञान हो उसे अवधिज्ञान कहते हैं।

२ जातिस्मरण एक प्रकारका ज्ञान होता है जिससे भूतकालका स्मरण होता है।

(१) पहिलेके प्रतिश्रुति, सन्मति, क्षेमङ्कर, क्षेमधर, सीमंकर इन पांच कुलकरोंने दोष होनेपर केवल "हा" इस प्रकार पश्चात्ताप रूप बोलदेना ही दड रक्खा था।

(२) सीमंधर, विमलवाहन, चक्षुष्मान, यशस्वान्, अभिचन्द्र इन पांचोंने "हा, मा" इस प्रकार दो शब्दोंका बोलना ही दंड नियत किया।

(३) अंतके चार कुलकरोंने "हा, मा, धिक्" इस तरह दंडका विधान किया था।

पाठ पांचवाँ।

चौदहवें कुलकर महाराजा नाभिराय और कर्मभूमिका प्रारंभ।

(१) तेरहवें कुलकरके कुछ समय बाद महाराजा नाभिराय हुए। ये चौदहवें कुलकर थे। इनके सामने कल्पवृक्ष प्रायः नष्ट हो चुके थे। क्योंकि तेरह कुलकरोंका समय भोगभूमिका था। जिस समयमें और जहा बिना किसी व्यापारके भोगोपभोगकी सामग्री प्राप्त होती रहती है उस समयको भोगभूमि कहते हैं। यह भोगभूमि महाराज नाभिरायके सन्मुख नष्ट हो गई और कर्मभूमिका प्रारंभ हुआ। अर्थात् जीविकाके लिये व्यापारादि कार्य करनेकी आवश्यकता हुई।

(२) इस समयके लोग व्यवहारिक कृत्योंसे बिलकुल अपरिचित थे खेती आदि करना कुछ नहीं जानते थे। और कल्पवृक्ष नष्ट हो ही चुके थे जिनसे कि भोजन सामग्री आदि प्राप्त हुआ

करती थी। अतएव इन्हें अपनी भूख शांत करनेके लिये बड़ी चिंता हुई और व्याकुलचित्त होकर महाराज नाभिरायके पास आये।

(३) यह समय युगके परिवर्तनका था। कल्पवृक्षोंके नष्ट होनेके साथ ही जल, वायु, आकाश, अग्नि, पृथ्वी आदिके संयोगसे धान्योंके वृक्षोंके अंकुर स्वयं उत्पन्न हुए और बढ़कर फलयुक्त हो गये व फलवाले और अनेक वृक्ष भी उत्पन्न हुए। जल, पृथ्वी, आकाश आदिके परमाणु इस परिमाणमें मिले थे कि उनसे स्वयं ही वृक्षोंकी उत्पत्ति हो गई परन्तु उस समयके मनुष्य इन वृक्षोंका उपयोग करना नहीं जानते थे।

(४) महाराजा नाभिरायके पास जाकर उन लोगोंने क्षुधादि दुःखोंको कहा और स्वयं उत्पन्न होनेवाले वृक्षोंके उपयोग करनेका उपाय पूछा।

(५) महाराजा नाभिरायने उनका डर दूर कर उपयोगमें आसकनेवाले धान्य वृक्ष और फलवृक्षोंको बताया व इनको उपयोगमें लानेका ढंग भी बताया तथा जो वृक्ष हानि करनेवाले थे, जिनसे जीवनमें बाधा आती और रोग आदि उत्पन्न हो सकते थे उनसे दूर रहनेके लिये उपदेश दिया।

(६) वह समय कर्मभूमिके उत्पन्न होनेका समय था। उस समय लोगोंके पास वर्तन आदि कुछ भी नहीं थे अतएव महाराजा नाभिने उन्हें हाथीके मस्तकपर मिट्टीके थाली आदि वर्त्तन स्वयं बनाकर दिये व बनानेकी विधि बताई।

(७) नाभिरायके समयमें बालककी नाभिमें नाल दिखाई

दी और उन्होंने इस नालको काटनेकी विधि बताई।

(८) हाथीके माथेपर वर्तन बनाने तथा भोजन बनाना न जानने आदिसे इस समयके लोगोंको आजकलके मनुष्य चाहें असभ्य कहें और शायद जंगली भी कह दें। और इसीपरसे इतिहासकार परिवर्तनके इस कालको दुनियांका बाल्यकाल समझते हैं। पर जैन इतिहासकी दृष्टिसे उस समयके लोग असभ्य या जंगली नहीं थे। क्योंकि वह समय परिवर्तनका था। जिस तरह एक समाजके मनुष्योंको दूसरी समाजके चालचलन अटपटे मालूम होते हैं और वह उनका अच्छी तरह संपादन नहीं कर सकता उसी प्रकार भोगभूमिके समयके—ऐसे समयके जिसमें कि भोगउपभोगके पदार्थ स्वय प्राप्त होते थे—रहनेवालोंको यदि ऐसा समय प्राप्त हो जिसमें कि स्वयं मिलना बंद हो जाय तो उन्हें अपना जीवन निर्वाह करना कठिनसा हो जायगा और वे जो कुछ उपाय करेंगे वह अपूर्ण और अटपटासा होगा। ऐसा ही समय महाराज नाभिरायके सन्मुख था। अतएव यह समयका प्रभाव था। इस लिये जैन इतिहास उस समयके मनुष्योंको असभ्य नहीं कह सकता। न वह जगतका बाल्यकाल था किंतु कर्मभूमिका बाल्यकाल था। उस समय जीवननिर्वाहके साधन बहुत ही अपूर्ण थे।

(९) महाराजा नाभिरायकी महारानीका—स्त्रीका नाम मरुदेवी था।

(१०) मरुदेवी बड़ी ही विद्वान, रुपवान् और पुण्यवान् थी।

(११) महाराजा नाभिराय, कर्मभूमिकी प्रवृत्ति करनेवाले और धर्ममार्गको सबसे पहिले प्रकाशित करनेवाले भगवान् ऋषभके पिता थे।

(१२) भगवान ऋषभके उत्पन्न होनेके पंद्रह महिने पहिले महाराजा नाभि और महारानी मरुदेवीके रहनेके लिये इंद्रकी आज्ञासे देवोंने एक बड़ा सुंदर नगर बनाया था। यह नगर १२ × ९ (४८ × ३६ कोश लंबा चौड़ा) योजनका बनाया गया था। इस नगरका नाम अयोध्या रखा। वर्तमानमें यह नगरी अवधप्रान्तमें बहुत छोटी और उजाड़ रह गई है। जिस देशमें यह नगर था उसका नाम आगे जाते सुकोशल पड़ा इस लिये अयोध्या सुकोशला भी कहलाई थी। इस नगरीमें जो लोग इधर उधरके भिन्न भिन्न प्रदेशोंमें रहा करते थे उन्हें लाकर देवोंने बसाया। महाराजा नाभिरायके लिये इसमें एक राजभवन बनाया गया था। इस नगरमें शुभ मुहूर्तसे राज्यप्रवेश किया गया था। भगवान् ऋषभ इनके यहां उत्पन्न होनेवाले थे अतएव महाराजा नाभिरायका अभिषेक इन्द्रोंने किया था।

(१३) भगवान् ऋषभके उत्पन्न होनेके पंद्रह मास पूर्व महाराजा नाभिरायके आगनमें रत्नोंकी वर्षा इन्द्रोंने की। प्रतिदिन साढ़े दश करोड़ रत्न प्रातःकाल, मध्यान्ह और शामको बर्षाये जाते थे।

(१४) भगवान् ऋषभदेवके गर्भमें आनेके पहिले मरुदेवीने इस भांति सोलह स्वप्न देखे (१) सफेद ऐरावत हाथी (२)

१ प्रत्येक तीर्थंकरके जन्म नगरकी रचना इन्द्र करवाता है।

गंभीर आवाज करता हुआ एक बड़ा भारी बैल (३) सिंह (४) लक्ष्मी (५) फूलोंकी दो मालाए (६) तारों सहित चंद्रमंडल (७) उदय होता हुआ सूर्य (८) कमलोंसे ढके हुए दो सुवर्णकलश (९) सरोवरोंमें क्रीड़ा करती हुई मछलियां (१०) एक बड़ा भारी तालाव (११) समुद्र (१२) सिंहासन (१३) रत्नोंका बना हुआ विमान (१४) पृथ्वीको फाड़कर आता हुआ नागेन्द्रका भवन (१५) रत्नोंकी राशि (१६) बिना धुएंकी जलती हुई अग्नि। इन सोलहों स्वप्नोंके देखनेके बाद एक महान् बैलको मुखमें प्रवेश करते हुए देखा। ये स्वप्न रात्रिके पिछले पहरमें देखे। सुवह उठते ही स्नान कर मरुदेवी महाराजा नाभिरायके पास गईं। महाराजने महारानीको अपने निकट सिंहासनपर बैठाया। इससे ज्ञात होता है कि उस समय पर्दा नहीं था और स्त्रियोंका पुरुष बड़ा सन्मान किया करते थे।

(१९) महाराजा नाभिरायसे महारानीने अपने स्वप्नोंका वृत्तांत कहा, तब महाराजाने अवधिज्ञानसे जानकर कहा कि तुमारे गर्भमें ऋषभदेव आये हैं। आषाढ सुदी दूज उत्तराषाढ नक्षत्रको ऋषभदेव महारानी मरुदेवीके गर्भमें आये

---

१ आजकलके इतिहासकारोंका कहना है कि प्राचीन कालमें रवि, सोम आदि वारोंकी कल्पना नहीं थी। जैन पुराणोंमें जहां तिथि आदिका वर्णन है वहां नक्षत्र, योग आदि अन्य कई ज्योतिष संबंधी बातें बतलाई हैं पर वार नहीं बतलाये। इनसे वर्तमान इतिहासकारोंके मतको जैनपुराण पुष्टि करते हैं। जैन ज्योतिषके किसी विद्वान्को इसपर विचार करना चाहिये।

जब भगवान् ऋषभ गर्भमें आये। तब तीसरे कालके चोरासी लाख पूर्व तीन वर्ष साड़े आठ माह बाकी रह गये थे अर्थात् ५९२७०४००००६००००००००३ वर्ष साड़े आठ मास तीसरे कालके शेष बचे थे उससमय भगवान् ऋषभदेव गर्भमें आये।

(१६) भगवान्के गर्भमें आते ही इन्द्रोंने व देवोंने आकर अयोध्यानगरीकी प्रदक्षिणा दी। और मातापिताको नमस्कार किया व उत्सव किये। और देवियोंने माताकी सेवा करना प्रारंभ कर दी।

पाठ छठवाँ।

युगादि पुरुष भगवान ऋषभ।

(१) महाराजा नाभिरायके पुत्र भगवान् ऋषभका जन्म मिती चैत्र कृष्ण नौमीको उत्तराषाढ़ नक्षत्रके पिछले भाग अभिजित् नक्षत्रमें हुआ। भगवान् जन्मसे ही मतिज्ञान–मानसिकज्ञान, श्रुतज्ञान–शास्त्रज्ञान और अवधिज्ञान–पूर्वजन्म आदिकी बातें जानना ये तीनों ज्ञान संयुक्त थे। भगवानका जन्म होते ही प्राकृतिक रीतिसे स्वर्गमें कई ऐसे कौतूहल पूर्ण कार्य हुए जिनसे देवोंने भगवान्के जन्म होनेका निश्चय किया और वे सब बड़ी धामधूमके साथ अयोध्या आये। अयोध्या आकर उन्होंने उसकी प्रदक्षिणा दी और इन्द्राणीको भेजकर इन्द्रने भगवान्को मंगाया। इन्द्राणी भगवान्को लेकर आई जिन्हें देखनेके लिये इन्द्रने एक हजार नेत्र बनाये तो भी उस रूपको देखकर वह तृप्त

न हुआ और वह हाथीपर विराजमान कर भगवान्‌को मेरु पर्वतपर ले गये। भगवान् सौधर्म इन्द्रकी गोदीमें मेरु पर्वतपर गये थे। सनत्कुमार, माहेन्द्र नामक दोनों इन्द्र भगवान्‌पर चँवर ढालते थे और ईशान इन्द्र भगवान्‌पर छत्र लगाये हुए गये थे। मेरु पर्वतपर इन्द्रोंने उसके पांडुक वनमें उत्तर दिशाकी ओर जो आधे चंद्रमाके आकार एक पांडुक शिला है उस शिलापर भगवान्‌को विराजमान किया और भगवान्‌का क्षीरसागरके जलसे अभिषेक किया। भगवान्‌को आभूषण व वस्त्र पहिनाये गये। फिर मेरु पर्वतपरसे भगवान्‌को अयोध्यामें लाकर इन्द्र व देवोंने घरपर बड़ा भारी उत्सव किया। अयोध्यामें मात-पिताने भी बहुत उत्सव किया। इन्द्रोंने उस समय संगीत और नाटक भी किया था। ऋषभदेव धर्मके सबसे पहिले प्रकाशक थे अतएव इन्द्रने इन्हें "वृषभस्वामी" कहकर पुकारा था। तथा इनके गर्भमें आनेके पहिले सबसे अंतिम स्वप्न माताने वृषभका देखा था इससे भी इनके मातापिता इन्हें 'वृषभ' कहकर पुकारा करते थे।

(२) बालक वृषभकी सेवाके लिये इन्द्रने देव-देवियां सेवामें रख छोड़ी थीं। भगवान् ऋषभ बाल्यावस्थामें बड़े ही सुंदर और मनोभावन थे इनके साथमें देवगण बालरूप धारण करके खेला करते थे। इनके लिये वस्त्राभूषण स्वर्गसे आया करते थे।

(३) भगवान् ऋषभ स्वयंभू थे स्वयंज्ञानी थे। उन्होंने विना पढे ही सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया था। ये बड़े यत्नसे संसा-

रका निरीक्षण करते थे और योग्यतापूर्वक कार्योंका संपादन करते थे।

(४) भगवान्‌की युवावस्थाकी सब चेष्टायें परोपकारके लिये होती थीं। और उनसे प्रजाका पालन होता था। भगवानका कुमारकाल बीसलाख पूर्वका था।

(५) भगवान् ऋषभदेव अनुपम बलशाली और दृढतासे कार्योंको करनेवाले थे। (समयको निरर्थक नहीं जाने देते थे)

(६) भगवान् ऋषभ गणितशास्त्र, छंदःशास्त्र, अलंकारशास्त्र, व्याकरणशास्त्र, चित्रकला, व लेखन प्रणालीका अभ्यास स्वयं करते थे और दूसरोंको कराते थे। मनोरंजनके लिये गाना, बजाना और नाटक व नृत्य आदिकी कलाओंका भी उपयोग करते थे। देवबालकोंके साथ गिल्ली-डंडा आदिके खेल भी खेला करते थे। ये जलक्रीडा-तैरना आदि भी करते थे। भगवान्‌के उपयोगमें आनेवाली वस्तुएं इन्द्र स्वर्गसे भेंटमें लाया करता था।

(७) युवावस्थामें भगवान्‌के पिता महाराज नाभिने अपने पुत्र भगवान् ऋषभसे विवाह करनेका परामर्श किया। सब पृथ्वीको अपने आदर्श चरित्रसे चलाने और भविष्यमें विवाहादिका मार्ग जारी करनेके लिये आपने अपनी सम्मति दी। वह सम्मति केवल ॐ शब्द बोलकर ही दी थी।

भगवान्‌का विवाह कच्छ और महाकच्छ नामक दोनों राजाओंकी दो कन्या यशस्वती और सुनंदासे किया गया।

(८) एक दिन महारानी यशस्वतीने रात्रीको इस भांति चार स्वप्न देखे—पहिले स्वप्नमें मेरुपर्वत द्वारा सारी पृथ्वी निगली

जाती हुई देखी, दूसरा स्वप्न चंद्र और सूर्य सहित मेरु पर्वत देखा, तीसरा स्वप्न कमलों सहित तालाव था और चौथे स्वप्नमें समुद्र देखा। सुवह उठकर मह रानी यशस्वती भगवान् ऋषभके पास जाकर अपने योग्य सिंहासनपर बैठीं और स्वप्नका हाल सुनाया। भगवान् ऋषभने इन स्वप्नोंका फल चक्रवर्ती पुत्रका उत्पन्न होना बताया।

(१०) चैत्र कृष्ण नवमीके दिन जब ब्रह्मयोग उत्तराषाढ नक्षत्र, मीन लग्न और चंद्रमा धन राशिपर था उस समय भगवान् ऋषभदेवके पहिले पुत्रका जन्म हुआ। इस पुत्रका नाम 'भरत' रखा गया।

(११) भगवान् ऋषभदेवने अपने पुत्र भरतके अन्न खिलाना, मुंडन, कर्णछेदन–कानोंका छेदना और यज्ञोपवीत संस्कार किये थे।

(१२) भरतके बाद भगवानके ९९ पुत्र और उत्पन्न हुए उनमेंसे कुछके नाम ये हैं.–वृषभसेन, अनंतविजय, महासेन, अनतवीर्य, अच्युत, वीर, वरवीर, श्रीपेण, गुणसेन, जयसेन, इत्यादि। तथा इसी स्त्रीसे–यशस्वतीदेवीसे एक कन्या और उत्पन्न हुई जिसका नाम 'ब्राह्मीसुंदरी' था।

(१३) भगवानकी दूसरी स्त्री सुनंदादेवीसे एक 'बाहुबली' नामक पुत्र हुआ और एक 'सुंदरीदेवी' नामक कन्या उत्पन्न हुई। भगवान् एकसौ तीन संतानके पिता थे।

(१४) एक दिन भगवान्का चित्त जगत्में अनेक भिन्न भिन्न प्रकारकी कलाओं और विद्याओंके प्रचारके लिये उद्विग्न होने लगा उसी समय उनके पास उनकी दोनों कन्यायें-ब्राह्मी और

सुदरीदेवी आई। इनकी इस समय प्रारंभ युवावस्था थी। दोनोंको भगवान्ने गोदीमें बिठाया और उन्हें पढ़नेके लिये मौखिक उपदेश देकर विद्याका महत्व बताते हुए अ, आ, इ, ई आदि स्वरोंसे अक्षरोंका ज्ञान प्रारंभ कराया और इकाई दहाई आदि गिन्ती भी पढाना प्रारंभ किया। भगवान् ऋषभदेवके चरित्रमें अपने पुत्रोंको पढ़ानेका वर्णन कन्याओंके पढानेके बाद आया है। इससे मालूम होता है कि भगवानने स्त्री-शिक्षाका महत्व जगत्में प्रगट करनेको ही ऐसा किया होगा अपने इन आदर्श कार्यमें भगवान्ने यह गूढ़ रहस्य रखा और प्रगट किया है कि पुरुष-शिक्षाका मूल कारर्ण स्त्रीशिक्षा ही है। इन कन्याओंको भगवान्ने व्याकरण, छंद, न्याय, काव्य, गणित, अलंकार आदि अनेक विषयोंकी शिक्षा दी थी।

(१९) दोनो कन्याओंके लिये भगवान्ने एक "स्वायभुव" नामक व्याकरण बनाया था और छंदःशास्त्र, अलंकारशास्त्र आदिशास्त्र भी बनाये थे।

(१६) पुत्रियोंको पढ़ाने बाद भरत आदि एकसो एक पुत्रोंको भी भगवान्ने पढ़ाया। भगवान्ने यद्यपि अपने सब पुत्रोंको अनेक विद्याओंकी शिक्षा दी थी तो भी नीचे लिखे पुत्र निम्न लिखित खास खास विषयोंके विद्वान् बनाये थे। (क) भरतको नीतिशास्त्रका (इन्हें नृत्यशास्त्र भी पढ़ाया था।) (ख) वृषभसेन (द्वितीय पुत्रको) संगीत और वादन शास्त्रका। (ग) अन्तविजयको चित्रकारी, नाट्यकला और मकानोंके बनानेकी विद्या (engineering) सिखाई थी।

(घ) बाहुबलीको कामशास्त्र, वैद्यकशास्त्र, धनुर्वेदविद्या, पशुओंके लक्षणोंको जाननेका ज्ञान और रत्नपरीक्षाका ज्ञान कराया था।

(१७) भगवानने जगत्‌में प्रचार होने योग्य सम्पूर्ण विद्यायें अपने पुत्रोंको सिखाई थीं।

(१८) नाभिरायके समयमें जो धान्य व फल स्वयं-प्राकृतिक-उत्पन्न हुए थे, उनमें भी रस आदि कम होने लगा और वे क्षीण होने लगे, तब सब प्रजा महाराजा नाभिके पास आई और अपने दुःखोंको (धान्य वृक्षोंके न रहनेसे क्षुधा आदिके दुःख) कहने लगी तब महाराजने भगवान् ऋषभके पास उस प्रजाको भेजा। परोपकारी भगवान् ऋषभने आर्यखंडकी प्रजाके कष्टोंको दूर करने और उनके व्यवहारके उपायोंके साधन बनानेकी इन्द्रको आज्ञा दी और उसकी सब रीति बताई। तब इन्द्रने इस भांति किया।

(१) जिनमंदिरोंकी रचना की।

(२) देश, उपदेश, नगर आदिकी रचना की।

(३) सुकोशल, अवंती, पुंड्र उंड्र अस्मक, रम्यक, कुरु, काशी, कलिंग, अंग, वंग, सुह्म, समुद्रक, काश्मीर, उशीनर, आनर्त, वत्स, पंचाल, मालव, दशार्ण, कच्छ, मगध, विदर्भ, कुरुजांगल, करहाट, महाराष्ट्र, सुराष्ट्र, आभीर, कोंकण, वनवास, आंध्र, कर्णाट, कौशल, चोल, केरल, दास, अभिसार, सौवीर, सूरसेन, अपरांत, विदेह, सिंधु, गांधार, यवन, चेदि, पल्लव, कांबोज, आरट्ट, वाल्हीक, तुरुष्क, शक और केकय इन बावन

देशोंकी रचना की। इनके-सिवाय और भी अनेक देशोंका विभाग किया।

(४) इन देशोंमेंसे कई देश ऐसे थे जिनमें अन्नकी उत्पत्ति नदियोंसे जल सींचकर की जाती थी और कई ऐसे थे जिनमें वर्षाके जलसे खेती होती थी और कई देश दोनों प्रकारके थे। कई देशोंमें जलकी बहुतायत थी और कइयोंमें जलकी कमी थी।

(५) प्रत्येक देशके राजा लोग भी नियत कर दिये थे।

(६) कई देश ऐसे थे जो लूटनेवाले शूद्रोंके अधीन थे।

(७) राजधानी प्रत्येक देशोंके मध्यमें बनाई गई थी।

(८) छोटे बड़े गावोंकी रचना इस भांति की गई थी।

(क) जिनमें कांटोंकी बाड़से घिरे हुये मकान बनाये गये थे और किसान व शूद्र रहते थे ऐसे सौ घरोंका **छोटा गांव** और पाचसौ घरोंका बड़ा **गांव** कहलाया।

(ख) छोटे गावकी सीमा एक कोश की और बड़े गावकी सीमा दो कोशकी रखी गई।

(ग गांवोंकी सीमा स्मशानसे, नदियोंसे, बड़के झुंड़ोंसे, बंबुल आदिके कांटेदार वृक्षोंसे व पर्वत और गुफाओंसे की गई (वृक्षादिसे आजकलभी सीमा–हद बांधी जाती है)

(घ) गांवोंको बसाना, उनका उपयोग करना, गांवनिवासियोंके लिये नियम बनाना, गावोंकी आवश्यकताओंको पूरी करना आदि कार्य राज्यके आधीन रखे गये।

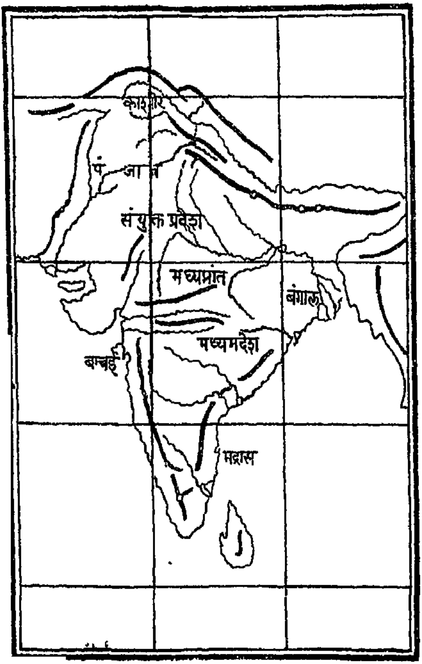

भारत वर्ष.

(ङ) जिन स्थानोंपर मकानात–हवेलियाँ, कई बड़े २ दरवाजे बनाये गये और प्रसिद्ध पुरुष बसाये गये उन स्थानोंका नाम नगर पड़ा।

(च) नदियों और पर्वतोंसे घिरे स्थानोंको खेड नाम दिया और चारों ओर पर्वतोंसे घिरे स्थानोंको खर्वट नाम दिया। जिन गांवोंके आस-पास पांचसौ घर थे उन्हें मडंब नाम दिया गया। समुद्रके आस–पासवाले स्थानोंको पत्तन और नदीके पासवाले गावोंको द्रोणमुख संज्ञा दी।

(छ) राजधानियोंके आधीन आठ आठसौ गॉव, द्रोणमुख गाँवोंके आधीन चार चारसौ और खर्वटोंके आधीन दो दोसौ रखे गये।

(९) भगवान्‌ने प्रजाको शस्त्रधारण करना व उनका उपयोग खेती, लेखन, व्यापार, विद्या और शिल्पकर्म–हस्तकौशल्य–हाथकी कारीगरी बताई।

(१०) उस समय जिन्होंने शस्त्र धारण किये वे क्षत्रिय कहलाये और जिन्होंने खेती, व्यापार और पशु–पालनका कार्य किया वे वैश्य कहलाये और इन दोनोंकी सेवा करनेवाले शूद्र कहलाते थे। इस प्रकार भगवान् ऋषभदेवने तीन वर्णोंकी–क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र वर्णोंकी–स्थापना की इसके पहिले, वर्ण–व्यवहार नहीं था। यहींसे वर्ण–व्यवहार चला है और उसकी कल्पना मनुष्योंकी आजिविकाके कार्यों परसे की गई थी।

(११) उस समय भगवान्‌ने शूद्रोंके दो भेद किये। एक

कारु और दूसरा अकारु। धोबी, नाई वगैरह कारु कहलाते थे। इनसे भिन्न अकारु।

(१२) कारु शूद्रोंके भी दो भेद किये गये, एक स्पृश्य-छूने योग्य। दूसरा न छूने योग्य। स्पृश्योंमें नाई वगैरह थे। और जो प्रजासे अलग रहते थे वे अस्पृश्य कहलाते थे।

(१३) विवाह आदि संबंध भगवान्‌की आज्ञानुसार ही किये जाते थे।

(१४) इस प्रकार कर्मयुगका प्रारंभ भगवान् ऋषभने आषाढ़ कृष्णा प्रतिपदाको किया था। इस लिये भगवान् कृतयुग-युगके करनेवाले कहलाते हैं। और इसी लिये उस समय प्रजा आपको विधाता, सृष्टा, विश्वकर्मा आदि कहा करती थी।

(१५) इस युगके प्रारंभ करनेके कितने ही वर्षों बाद भगवान ऋषभ, सम्राट पदवीसे विभूषित किये गये और उनका राज्याभिषेक किया गया। सब क्षत्रिय राजाओंने भगवान्‌को अपना स्वामी माना था व महाराजा नाभिरायने भी आगेसे भगवान्‌को ही अपने राज्यका स्वामी बनाकर अपना मुकुट भगवान्‌के सिरपर रखा था।

(१६) सम्राट् पद [illegible]के अनंतर भगवान्‌ने व्यापारादिके व शासनके नियम बनाये।

(१७) भगवान्‌ने क्षत्रियोंको शस्त्र चलानेकी शिक्षा स्वयं दी और वैश्योंके लिये परदेशगमनका मार्ग खुला करनेके लिये स्वयं विदेशोंको गये। और स्थलयात्रा व जलयात्रा-समुद्रयात्रा प्रारंभ की।

(१८) भगवान्‌ने विवाहका नियम इस प्रकार बनाया था।

(१) शूद्र–शूद्रकी कन्यासे साथ विवाह करे।

(२) वैश्य–वैश्यकी और शूद्रकी कन्याके साथ विवाह करे।

(३) क्षत्रिय–क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रकी कन्याके साथ विवाह करे।

उस समय वर्ण भेद था, जाति भेद नहीं था।

(१९) उस समय अपने अपने वर्णोंकी आजीविका छोड़ कर दूसरे वर्णोंकी आजीविका कोई नहीं कर सकता था।

(२०) भगवान्‌ने भी अपने पिताके ही अनुसार हा, मा, और धिक्कार ऐसे शब्दोंके बोलनेका दंड विधान किया था। क्योंकि उस समयकी प्रजा बड़ी सरल, शांत और भोली थी। इसलिये वह इतने ही दंडको बहुत कुछ समझती थी।

(२१) फिर भगवान्‌ने एक एक हजार राजाओंके ऊपर चार महामंडलेश्वर राजाओंकी स्थापना की। इनके नाम इस भांति है.–हरि, अकंपन, काश्यप और सोमप्रभ।

इन चारों ही राजाओंने चार वंशोंकी स्थापना की। हरिने हरिवंश, अकंपनने नाथवंश, काश्यपने उग्रवंश और सोमप्रभने कुरुवंश चलाया। ये चारों महामंडलेश्वर, उक्त चारों वंशोंके नायक हुए। तथा भगवान्‌ने अपने पुत्रोंको भी पृथ्वी व अन्य संपत्ति बाँटी।

(२२) भगवान्‌ने प्रजापर उसको न अखरनेवाला बहुत कम कर लगाया।

(२३) सबसे पहिले भगवान्‌ने ईख-साँटोंके रसको संग्रह करनेका उपदेश दिया था इससे भगवान् इक्ष्वाकु कहलाये और इसीके कारण आपके वंशका नाम इक्ष्वाकुवंश प्रसिद्ध हुआ।

(२४) भगवान्‌ने ४४४६२८०००००००००००००००० वर्ष राज्य किया था।

(२५) भगवान्‌ने कच्छ महाकच्छ आदि नरेशोंको अधिराज पद दिया और अपने पुत्रोंके लिये भी राज्य-विभाग कर दिया था।

(२६) भगवान्‌ने अपना समय सदा परोपकारमें लगाया और लोगोंकी इच्छानुसार दान दिया।

(२७) एक दिन भगवान् राजसभामें बैठे थे कि भगवान्‌की सेवा व पूजा करने व उनका मनोविनोद करनेके लिये इन्द्र आया। उसके साथमें नृत्य करनेवाली अप्सरा व गंधर्व जातिके-गाने-बजानेवाले देव भी थे। **नीलांजना** नामक अप्सराका नृत्य इन्द्रने कराया। इस अप्सराकी आयु बहुत ही थोड़ी रह गई थी अर्थात् नृत्य करते करते ही उसकी आयु पूरी हो गई। यद्यपि इन्द्रने ऐसा प्रबंध कर दिया कि उसके नष्ट होनेके साथ ही दूसरी अप्सरा उसीके रूपकी होकर नृत्य करने लगी, और दूसरे सभासद इसको समझ भी न सके, परंतु बहुज्ञानी भगवान्‌ने समझ लिया और संसारको असार समझ आपका चित्त वैराग्यकी ओर लग गया। यह देखते ही लौकांतिक देवोंने आकर भगवान्‌की स्तुति की और भगवान्‌के वैराग्य चितवनकी प्रशंसा की।

(२८) भगवान्‌ने अपने ज्येष्ठ पुत्र भरतको अपने सम्राट् पद

पर स्थापन कर उनका राज्याभिषेक किया। और बाहुबलीको युवराज पद दिया।

(२९) वैराग्य होते ही इन्द्रोंने भगवानका अभिषेक किया और बड़ा भारी उत्सव मनाया। इस समय भगवानकी आयु ८३ लाख पूर्वकी थी।

(३०) भगवान् जब तप धारण करनेको वनमें जाने लगे सब प्रजाको बहुत दुःख हुआ। कुछ दूर तक राजा लोग भगवान्के साथ गये फिर इन्द्र और देवोंके साथ भगवान् वनको चले गये।

(३१) चैत्र वदी नोमीके दिन भगवान ऋषभने सिद्धार्थ नामक वनमें जो अयोध्यासे न तो दूर था और न बहुत पास ही था, जाकर सब कुटुम्बियोंकी आज्ञापूर्वक दीक्षा धारण की। दीक्षा लेते समय सब परिग्रहोंका त्याग किया, नग्नमुद्रा धारण की और केशोंका पंचमुष्टि लोंच किया। भगवानके साथ चार हजार राजाओंने भी दीक्षा धारण की। इन लोगोने भगवानका अभिप्राय तो समझा नहीं था केवल भगवानकी भक्तिसे ही दीक्षा धारण की थी। दीक्षा लेनेके बाद इन्द्रोंने भगवानकी पूजा की। भगवानने पहिले छह मासका उपवास धारण करनेकी प्रतिज्ञा कर तप करना प्रारंभ किया, तप धारण करते समय भगवानको मनःपर्ययज्ञानकी उत्पत्ति हुई। इस ज्ञानसे मनकी गति जानी जाती है।

(३२) जिन राजाओंने भगवानके साथ दीक्षा ली थी वे दुःखोंको सहन न कर सके अतएव वे लोग फल फूल खाने लगे। उनसे भूँख न सही गई। महाराजा भरतके डरसे ये शहरोंमें

नहीं जाते थे। इन लोगोंने भिन्न भिन्न भेष धारण कर लिये थे; किसीने लंगोटी लगा ली थी, कोई दंड लेकर दंडी बन गया था, किसीने तीन दंडोंको धारण किया था, इस लिये उसे लोग त्रिदंडी कहते थे।

(३३) इन लोगोंके देव भगवान् ऋषभ ही थे। वे उन्हींके चरणोंकी पूजा करते थे। फिर भगवान्के पोते—पुत्रके पुत्र मरीचीने योग शास्त्र और सांख्य शास्त्रकी रचना की और बहुतसे लोगोंको अपनी ओर झुकाया।

(३४) भगवान्ने छह महीनोंतक बड़ा ही कठिन तप किया। भगवान्की जटायें बढ़ गई थीं। भगवान्की शांतिका वनके पशुओं पर यहाँतक असर पड़ा था कि हिरण और सिंह एक स्थानपर रहते थे और हिरणको सिंह कोई कष्ट नहीं पहुँचाता था।

(३५) छह माह पूरे हो जानेपर भगवान आहारके लिये नगरमें गये परन्तु आहार देनेकी विधि उस समय कोई नहीं जानता था। भगवानका अभिप्राय न समझ कोई कुछ और कोई कुछ लाकर भगवानके सन्मुख रखता था परंतु भगवान उनकी ओर देखने तक नहीं थे अंतमें जाकर जब करीब सात माहसे कुछ दिन ऊपर हो गये तब वैशाख सुदी तीजको कुरुजांगल देशके राजा सोमप्रभुके छोटे भाई युवराज श्रेयांसने जातिस्मरण-पूर्व भवका ज्ञान हो जानेसे विधि पूर्वक इक्षु-रसका आहार दिया इससे उस राजाके यहां उन्होंने व देवोंने पंचाश्चर्य किये थे।

(३६) एक दिन भगवान् विहार करते करते पुरिमताल नामक नगरके पासवाले शकट नामक वनमें जा पहुंचे और वहां

पर ध्यान धारण किया। भगवानके बडे भारी तपश्चरणसे चार घातिया कर्मोंका नाश हुआ और भगवानको केवलज्ञान सर्वज्ञत्व प्राप्त हुआ। जिस दिन भगवान सर्वज्ञ हुए वह दिन फागुन बदी एकादशीका दिन था। भगवानने एक हजार वर्ष तक तप किया था।

(३७) भगवान्के केवलज्ञानका समाचार प्राकृतिक रीतिसे स्वयं ही स्वर्गमें पहुंच गया। इतने बडे महात्माके सर्वज्ञ होने पर जगतमें प्राकृतिक रीतिसे विलक्षण परिवर्तन हो जाना आश्चर्यजनक नहीं कहला सकता। अतएव भगवानके सर्वज्ञ होते ही स्वर्गोंमें बाजे स्वयमेव बजने लगे,। घटोंकी ध्वनि हुई, पृथ्वी पर चारों ओर चार चार कोशतक सुकाल हो गया, छहों ऋतुओंके फल फूल एक ही समयमें उत्पन्न हो गये आदि कई आश्चर्यजनक घटनायें हुई। केवलज्ञान उत्पन्न होनेपर जो जो घटनायें होती है उनका वर्णन परिशिष्ट स० " ड " में किया गया है।

(३८) स्वर्गमें भगवानके सर्वज्ञ होनेके चिन्ह प्रगट होते ही उसी समय इन्द्रोंने अपने आसनसे उठकर भगवान्को नमस्कार किया और देवोंकी सेनाके साथ बडी सज–धजसे भगवान्की पूजा करनेको आये।

(३९) केवलज्ञान होते ही भगवान्का एक सभामडप बनाया गया इसका नाम समवशरण है। यह अडतालीस कोश लंबा और इतना ही चौड़ा था। यह समवशरण मडप बहुत ही शोभा युक्त और विलक्षणता, सहित था, क्योंकि देवोंने इसकी रचना की

१ समवशरणकी पूर्ण रचना परिशिष्ट नं० (घ) में देखो.

थी । भगवान् मंडपकी वेदिकामें सिंहासनके ऊपर अधर विराजमान रहते थे । भगवान्के ऊपर तीन रत्नमय छत्र लगे थे और चौंसठ चमर दुलते थे । यह पृथ्वीसे बहुत ऊंचा था । इसमें बारह सभायें थीं जिनमें बारह प्रकारके जीव भगवान्‌का उपदेश सुनते थे । वे बारह प्रकारके जीव इस प्रकार थे—१ ले कोठेमें गणधर—भगवानके उपदेश ग्रहणकी योग्यता रखनेवाले माधु, २रे कोठेमें कल्पवासी देवोंकी देवांगनायें, ३रेमें आर्यिका—साध्वी और गृहस्थ मनुष्योंकी स्त्रियाँ, ४थेमें ज्योतिष्क देवोंकी देवांगनाएँ, पांचवेमें व्यंतर देवोंकी देवागनाएँ, छठवेमें भवनवासिनी देवागनाएं, सातवेंमें भवनवासी देव, आठवेमें व्यंतर देव, नौवेमें ज्योतिष्क देव, दशवेमें कल्पवासी देव, ग्यारहवेमें चक्रवर्ती, राजा महाराजा और सर्व साधारण मनुष्य, बारहवेमें सिंह, गाय, बैल, हिरण, सर्प आदि तिर्यंच—पशु । इस प्रकार बारहों कोठोंके बारह प्रकारके प्राणी बैठकर उपदेश सुना करते थे । भगवान्‌की सभामें किसी भी प्राणीको आनेकी मनाही नहीं होती थी, सब आ सकते और भगवानका उपदेश सुन सकते थे, यहांतक कि भगवानका उपदेश पशुओंको भी सुननेका अवसर दिया जाता था । मनुष्य मात्र भगवानकी सभामें एक ही कोठेमें बैठते थे। भगवानकी दृष्टिमें साधारणसे साधारण और बड़ासे बड़ा आदमी समान था । भगवानकी शांतिके प्रभावसे पशुतक वैर छोड देते थे और सिंह, गाय आदि परस्परके विरोधी पशु भी एक स्थानपर बैठकर भगवानका उपदेश सुनते थे । भगवानका उपदेश (बिना इच्छाके)

प्रतिदिन तीन बार हुआ करता था और वह ऐसे उच्चारणसे होता था कि जिसे प्राणीमात्र अपनी अपनी भाषामें समझ लेते थे। और उसका उच्चारण अक्षर रहित; बिना दंत, ओठ, तालु आदिमें किया हुए ही होता था। भगवानके उपदेशको–ज्ञानको सुनकर धारण करनेवाले गणधर होते हैं। भगवान् ऋषभके चौरासी गणधर थे। और उनमेंसे मुख्य गणधर **वृषभसेन** थे। सभामें हर कोई प्रश्न कर सकता था, किसीको रोक टोक नहीं थी। इसी सभामें भगवानने आत्माके स्वाभाविक धर्म–जैन धर्मका प्रकाश किया था। और भिन्न भिन्न साधुओं, राजाओं, देवों और सर्व साधारणोंके प्रश्नोंका उत्तर दिया था। इस सभामें सबसे अधिक प्रश्न चक्रवर्ती **भरतने** किये थे।

(४०) भगवानके उपदेशके बाद भगवानके पुत्र वृषभसेनने दीक्षा ली और ये ही सबसे पहिले गणधर हुए। यह वृषभसेन पुरिमताल नगर, जिसके कि समीपी वनमें भगवान्को केवल ज्ञान हुआ था, का स्वामी और भरतका छोटा भाई था। कहा जाता है कि विना गणधरके सर्वज्ञकी दिव्यध्वनि नहीं खिरती परतु भगवान् ऋषभदेवके संबंधमें ऐसा नहीं हुआ। भगवान्के उपदेशको सुनकर वृषभसेनने पीछेसे दीक्षा धारण की थी और गणधर हुआ था।

(४१) वृषभसेनके समान कुरु देशके राजा सोमप्रभ और श्रेयांसने भी दीक्षा ली और वे भी गणधर हुए।

(४२) ब्राह्मीदेवी और सुंदरीदेवी (भगवानकी दोनों पुत्रियाँ) भी दीक्षा लेकर सबसे पहिली आर्यिकाएँ बनीं थीं।

(४३) इस शकट वनसे उठकर भगवान फिर विहार करनेको चले और कुरुजांगल, कौशल, सुदन, पुंड्र, चेदि, अंग, वंग, मगध, अंध्र, कलिंग, मद्र, पंचाल, मालव, दशार्ण, विदर्भ आदि अनेक देशोंमें भगवानने विहार किया। और अपने उपदेशामृतसे जगत्का कल्याण किया। भगवान जहॉ जहॉ जाते थे वहॉ वहॉ ऊपर कहे अनुसार समवशरण मंडप बन जाता था। विहार करते करते अंतमें भगवान कैलाश पर्वतपर पहुँचे।

(४४) जिस समय भगवान विहार करते थे उस समय सबसे आगे धर्म चक्र चलता था। देवोंकी सेना चलती थी। आकाशमें जयध्वनि की जाती थी। भगवानके चरणोंके नीचे देवगण एकसौ आठ पॉखुडीके कमल रचते जाते थे। भगवान पृथ्वीसे बहुत ऊँचे अधर चलते थे।

(४५) जब छोटे भाइयोंने भरत चक्रवर्तीकी आज्ञा न मान भगवान ऋषभसे प्रार्थना की कि आप हमारे स्वामी हैं, आपहीने हमें राज्य दिया है, अब हम भरतको नमस्कार नहीं कर सकते तब भगवानने उन्हें धर्मोपदेश देकर कहा कि तुम्हारे अभिमानकी रक्षा केवल मुनिव्रतके अंगीकार करनेसे हो सकती है अतएव तुम दीक्षा धारण करो। भगवान्के इस उपदेशके अनुसार भरतके छोटे भाइयोंने–भगवान्के छोटे पुत्रोंने भगवानसे ही दीक्षा ली थी। और कठोर तपद्वारा द्वादशांगका ज्ञान प्राप्त किया था। इस समय केवल बाहुबलीने दीक्षा नहीं ली थी।

(४६) भरतने जिस चौथे ब्राह्मण वर्णकी स्थापना की थी

उसके संबंधमें भगवानसे भरतने प्रश्न किया था कि प्रभो! इसका परिणाम क्या होगा तब भगवानने उत्तर दिया था कि चतुर्थ कालमें तो इस वर्णसे लाभ होगा पर पंचम कालमें यह वर्ण जैन धर्मका द्रोही बन जायगा।

(४७) महाराज भरतने सोलह स्वप्न देखे थे उनका फल भी ऋषभदेवने यही बताया था कि पंचम कालमें (पार्श्वनाथ स्वामीके बाद) धर्ममें क्रमशः न्यूनता हो जायगी।

(४८) भगवान् ऋषभ देवका शिष्य यों तो विश्व ही था, पर आपकी सभाका चतुर्विध संघ इस प्रकार था—

८४	गणधर
४७५०	चौदह पूर्वके पाठी (पढ़नेवाले)
४१५०	शिक्षक
९०००	अवधिज्ञानी मुनि
२००००	केवलज्ञानी
२०६००	विक्रिया ऋद्धिके धारक साधु
१२७५०	मन.पर्ययज्ञानके धारक साधु
१२७५०	वादी साधु
८४०८४	
३५००००	ब्राह्मी आदि आर्यिकाएँ
३०००००	श्रावकके व्रतोंको धारण करनेवाले श्रावक
५०००००	सुव्रता आदि श्राविकायें (श्रावक व्रतकी धारक स्त्रियां)

इन सोलह स्वप्नोंका वर्णन भरतके पाठमें दिया गया है।

(४९) केवलज्ञान होनेपर भगवान् अनंतज्ञान, अनंतदर्शन अनंत सुख और अनंतवीर्य (बल) कर युक्त हो गये थे।

(५०) भगवान् ऋषभदेवने एक हजार वर्ष और चौदह दिन कम एकलाख पूर्व तक समवरण सभामें उपदेश दिया था। जब आयुके चौदह दिन शेष रह गये तब उपदेश देना बंद हुआ और आप पर्यंकासन लगाकर शेष कर्मोंका नाश करने लगे। यह दिन पोष सुदी १५ का था। इसी रात्रिको भरत चक्रवर्ति अर्क्ककीर्ति, युवराज, चक्रवर्तीका गृहपति रत्न, चक्रवर्तीके मुख्य मंत्री, चक्रवर्तीके सेनापति, जयकुमारके पुत्र अनंतवीर्य, चक्रवर्तीकी पटरानी सुभद्रा, काशीनरेश चित्रांगद आदि बड़े २ पुरुषोंने कई प्रकारके स्वप्न देखे जिनका फल भगवान्का मोक्ष जाना था।

(५१) आनंद नामक पुरुष द्वारा भगवान्का कैलाशपर आगमन सुन–भरत चक्रवर्ती वहाँ गया और चौदह दिनों तक भगवान्की सेवा की।

(५२) अंतमें माघ वदी १४ के दिन सूर्योदयके समय अनेक साधुओं सहित भगवान ऋषभदेव मोक्षको पधारे। भगवान्के मोक्ष चले जानेपर देवोंने आकर निर्वाणकल्याणक नामक पाँचवाँ कल्याणकोत्सव मनाया। और भगवानके शरीरका चंदनादि सुगंधित द्रव्योंद्वारा अग्निकुमार जातिके देवोंके मुकुटकी अग्निसे दाह किया। भगवान्के शरीरका जहाँ दाह किया था उसके दाहनी ओर गणधरादि साधुओंके शरीरका दाह किया और बाईं ओर केवलज्ञानियोंके शरीरका दाह किया और

बड़ा उत्सव मनाया । दाहकी भस्मको मस्तकादिपर धारण किया । इन तीन प्रकारके महापुरुषोंके दाहसे तीन प्रकारकी अग्निकी स्थापना करनेका देवोंने श्रावकोंको उपदेश दिया । और प्रतिदिन पांचवीं प्रतिमातकके धारक श्रावकोंको इन अग्नियोंमें होमादि करनेकी आज्ञा दी ।

(९२) भगवान ऋषभदेवका शरीर छूट जानेपर भरत चक्रवर्तीने बहुत शोक किया था, पर अंतमें वृषभसेन गणधरके उपदेशसे वह शांत हुआ ।

पाठ सातवाँ ।

भरत चक्रवर्ती ।

(१) भगवान् ऋषभदेवके सबसे बड़े पुत्र महाराज भरत थे । ये चक्रवर्ति थे । अवसर्पिणी कालके सबसे पहिले चक्रवर्ति ये ही हुए हैं । जिस समय ये गर्भमें आये उस समय इनकी माता यशस्वती महारानीने चार स्वप्न देखे थे-पहिला स्वप्न. समस्त पृथ्वीका मेरु पर्वत द्वारा निगला जाना, दूसरा स्वप्न सूर्य और चंद्रमा सहित मेरु पर्वत, तीसरा स्वप्न हंसों सहित सरोवर और चौथा स्वप्न चंचल लहरों सहित समुद्र, इस प्रकार चार स्वप्न देखे थे । इन स्वप्नोंका फल महारानी यशस्वतीने अपने पति ऋषभदेवसे पूछा उन्होंने इनका फल चक्रवर्ति और चरम शरीरी पुत्रका गर्भमें आना बताया ।

(२) महाराज भरतका जन्म चैत्र कृष्णा नवमीके दिन उत्तराषाढ नक्षत्रमें हुआ था ।

(३) भरत पहिले चक्रवर्ती और छहों खंडके स्वामी थे। अतएव इनके नामपर ही आर्य लोगोंके रहनेका स्थान **भारत-वर्ष** कहलाया।

(४) भरतका शरीर बहुत ही सुंदर था और वह ५०० धनुष ऊंचा था। इनमें सब गुण प्रायः भगवान् ऋषभदेव हीके समान थे।

(५) छहों खंडोंके मनुष्य, पशु और देवादिकोंमें जितना बल था उससे कई गुना ज्यादह बल चक्रवर्ती भरतकी भुजामें था।

(६) भरतको भगवान् ऋषभदेवने स्वयं पढाया था। यों तो भरतको भगवान्ने सब विद्याओंमें प्रवीण कर दिया था, पर मुख्यतया इनको नीतिशास्त्रका विद्वान् बनाया था। इन्हें नृत्य-कला भी सिखलाई थी।

(७) भगवान् ऋषभदेव जब तप करनेको उद्यत हुए तब उन्होंने भरतको सम्राट् पद देकर राज्याभिषेकका बडा भारी उत्सव किया।

(८) महाराज भरतने, जब भगवान् ऋषभदेव तपके लिये उद्यत हुए तब भगवानकी आज्ञासे सुवर्ण, रत्न, घोड़ा, हाथी आदिका महादान दिया था।

(९) जब भगवान् वृषभने दीक्षा धारण की थी तब महाराज भरतने बड़ी भक्तिके साथ भगवानकी पूजा की थी। आम्र, बिजौरा आदि कई वन-फल भक्तिके वश भगवान्को चढाये थे।

जल, चंदन, अक्षत आदि अष्ट द्रव्योंसे भगवान्‌की पूजा की थी।

(१०) एक दिन भरत महाराजके धर्माधिकारी (कर्मचारी) ने आकर ऋषभदेवको केवलज्ञान उत्पन्न होनेके समाचार कहे और उसी समय राज्यको शस्त्रशालाके अधिकारीने शस्त्रशालामें चक्र-रत्नकी उत्पत्तिके समाचार कहे और महारानीके सेवकने पुत्रोत्पत्तिके समाचार कहे। ये तीनों हर्षदायक समाचार एक साथ सुनकर महाराज भरत विचार करने लगे कि पहिले किसका उत्सव मनाना चाहिये। अतमें धर्म कार्यको मुख्य समझकर अपने छोटे भाइयों, राज्य कर्मचारियों और प्रजा तथा सेना सहित भगवान् ऋषभ-देवके केवलज्ञानकी पूजाके लिये भरत गये और बड़े उत्साहसे केवलज्ञानकी पूजा की। तथा वहांसे लौटकर चक्ररत्नकी पूजा कर फिर पुत्रोत्सव मनाया। इन उत्सवोंमें महाराजने बहुत भारी दान दिया। सडकों और गलियोंमें रत्नोंके ढेर लगाकर बाट दिये।

(११) चक्रवर्ती महाराज दिग्विजय करनेको जब उद्यत हुए तब शरद ऋतुका प्रारंभ था। महाराज भरत अपनी सेना सहित दिग्विजय करनेको चले उन्होंने अपनी सेना चलानेका क्रम इस प्रकार रखा था कि सबसे आगे पैदल सेना, उसके पीछे सवार, उनके पीछे रथ और रथोंके पीछे हाथी।

(१२) महाराज भरतकी सेना मार्गमें आये हुए किसानोंके खेतोंको जबर्दस्ती नुकसान पहुँचाती थी।

---

१ पूजनके अष्ट द्रव्योंके नाम-जल, चंदन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल।

(१३) सेनाके साथ महाराज भरतकी महारानियां भी थीं।

(१४) जिन रास्तोंसे महाराज भरत अपनी सेना सहित जाते थे उन मार्गोंमें आये हुए गांवोंके अधिपति घी, दूध, मक्खन, दही, फल, और भील आदि जंगली जातियोंके राजा आदि गजमोती, हाथीदांत तथा चमरी गायके बाल और कस्तूरी हिरणकी नाभि भेंट करते थे।

(१५) अयोध्यासे चलकर महाराज भरतकी सेनाने गंगा नदीके किनारे सबसे पहिले डेरा दिये थे। साथके मनुष्योंको ठहरनेके लिये कपड़ेके तंबू लगाये गये थे। घोडोंकी घुड़शाला भी कपडेकी ही बनाई गई थी। डेरोंके आसपास कांटोंकी बाढ़ बनाई गई थी। रास्तेमें जितने राजा महाराजा मिले सबने भरतकी आधीनता स्वीकार की। गंगासे चलकर गंगाके किनारे किनारेहीके मार्गसे महाराज भरत पूर्व समुद्रके समीप पहुचे। वहां किनारेपर अपनी सेनाको छोड और सेनापतिको उसकी रक्षाकी आज्ञा दे स्वयं महाराज भरत अर्तिजय नामक रथपर सवार हो अस्त्र शस्त्रों सहित समुद्रके भीतर समुद्रके स्वामी मगध नामक देवको वश करनेके लिये चले। भरतके रथके घोड़े जल और स्थल दोनोंमें जा सकते थे। समुद्रके भीतर बारह योजन जाकर रथ ठहर गया। वहांसे भरतने बाण छोडा इस बाणका नाम अमोघ था। बाणके साथ महाराजने यह समाचार भी लिखकर भेजे थे कि "मैं भरत चक्रवर्ती ऋषभदेवका पुत्र हूं। अतएव सब व्यंतर देव मेरे आधीन हों," यह बाण समुद्रके स्वामी मगध देवकी सेनामें

हलचल करता हुआ मगधके निवास स्थानपर जाकर पड़ा। इसे देख मगध बड़ा क्रोधित हुआ। पर अंतमें मंत्रियोंके समझानेपर वह चक्रवर्ती भरतके सामने आया और उनकी आधीनता स्वीकार कर रत्नोंका एक हार व रत्नोंके दो कुंडल महाराजको भेंट किये। इस प्रकार चक्रवर्तीने पूर्व दिशा विजय की। यहांसे दक्षिण दिशा जीतनेको भरत अपनी सेना सहित चले। रास्तेके सब राजाओंको वश करते जाते थे। जो राजा अधिक कर लेता था उसे निकालकर दूसरा राजा बनाते और जो अनीतिसे चलता था उस राजाको दंड देते हुए दक्षिण दिशाके समुद्रपर पहुंचे और वहांके स्वामी देवको पूर्व दिशाके देवके समान वश किया। इस देवका नाम **वरतनु** था। इस देवने कवच, हार, चूड़ारत्न, कड़े और रत्नोंका यज्ञोपवीत आदि भेंटमें दिये थे। पूर्वदिशा और दक्षिण दिशाकी विजय करते हुए मार्गमें अंग, बंगाल, कलिंग, मगध, कुरु, अवन्ती, उज्जैन, पंचाल, काशी, कोशल, विदर्भ, मद्र, कच्छ, वेदी, वत्स, सुह्म, पुंड्र, औड्र, गौड, दशार्ण कामरूप, काश्मीर, उशीनर, मध्यदेश, चेदि, कसेरु, कालिंद, कालकूट, मल्ल (भीलोंका प्रदेश) त्रिकलिंग, औद्र, आंध्र, प्रातर, चेर, पुन्नार, कूट, ओलिक, महिष, कमेकुर, पांडय, अंतर पांडय, केरल कर्णाकट आदि प्रदेशोंको चक्रवर्तिकी आज्ञासे सेनापतिने वश किया था। दक्षिणकी विजयकर चक्रवर्ति पश्चिम दिशाकी विजयके लिये निकले। पहिले वे सिंहलद्वीपको गये

१ इन प्रान्तोंकी विजय करते समय जो पर्वत और नदियाँ मिली थीं उनके नाम ग्याहरवें पाठमें दिये गये हैं।

और वहाँ विजय प्राप्त की। वहाँसे चलकर रास्तेमें विंध्याचलपर डेरा दिये। भरतकी सेना विंध्याचलकी नर्मदा नदीके दोनों ओर ठहरी थी। यहाँके जंगली राजाओंने भी भरतकी आधीनता स्वीकारकर मोतियों आदिकी भेंटें दी थीं। रास्तेके सब राजा ओंने भरतकी आधीनता स्वयं स्वीकार की और लाट देशके राजाओंको भरतने लालाटिक पद दिया [जो स्वामीका अभिप्राय समझ उनकी आज्ञानुसार काम करते हैं वे लालाटिक कहलाते हैं।]। सोरठ देशके राजाओंको वशकर भरत गिरनार पर्वतपर पहुँचे और यह समझकर कि इस पर्वतसे आगामी बावीसवें तीर्थंकर नेमिनाथ मोक्ष जावेंगे उसने गिरनारकी प्रदक्षिणा की। इस प्रकार पश्चिम दिशाके सब राजाओंको जीतकर वह पश्चिम समुद्रके किनारे पहुँचे और उस समुद्रके स्वामी प्रभास नामक देवको पूर्व दिशामें जिस प्रकार विजय की थी उस प्रकार जीता। प्रभास नामक देवने सुवर्णका जाल और मोतियोंका जाल तथा कल्पवृक्षोंके फूलोंकी माला भेंटमें दी। पश्चिम दिशा विजयकर उत्तर दिशाकी विजयको भरत चक्रवर्ती चला। रास्तेके सर्व राजाओंको वश करते हुए सिंधु नदीके किनारे किनारे इसकी सेना जाने लगी और अंतमें विजयार्द्ध पर्वतपर जाकर पहुँची। इस पर्वतकी शिखरें मणियोंकी हैं। और इसका वर्ण सफेद था क्योंकि यह पर्वत चांदीका है। भरतकी सेना विजयार्द्ध पर्वतके बीचमें पांचवें शिखरके पास जाकर ठहरी। भरतके ठहर जानेपर विजयार्द्ध पर्वतका

१ चक्रवर्तीकी दिग्विजय विजयार्द्धपर पहुँच जानेसे आधी हो जाती है। इसलिये इस पर्वतका नाम विजयार्द्ध पड़ा है।

स्वामी अंतरदेव भरतके पास आया और भरतकी आधीनता स्वीकार की और भरतका अभिषेक किया। तथा रत्न, सफेद छत्र, भृंगार, दो चंवर और एक सिंहासन भेंट किया। यहाँ तक भरतने दक्षिण भारतकी विजय की।

(१६) अब वे उत्तर भारतकी विजयके लिये तैयार हुए। पहिले उन्होंने चक्ररत्नकी पूजा की फिर कुछ हटकर विजयार्द्ध पर्वतकी पश्चिम गुफाके पासवाले वनमें ठहरे। यहाँपर कई राजाओंने आकर भरतकी सेवा की और अनेक भेंटें दीं। यहींपर कुरुदेशके राजा सोमप्रभके जयकुमार व और भी कई राजा भरतकी सेनामें आकर मिले थे। यहींपर विजयार्द्धकी एक शिखरपर रहनेवाला कृतमाल नामक देवने भरतकी आधीनता स्वीकार की और विजयार्द्धकी पश्चिम गुफाका मार्ग बतलाया जिसका द्वार खोलनेके लिये भरतने अपने सेनापतिको भेजा। सेनापतिको गुफाका द्वार "चक्रवर्तीकी जय" इन शब्दोंको बोलकर दंडरत्नसे खोला और पश्चिम म्लेच्छ खंडकी विजयके लिये चला। इसे देखकर म्लेच्छ खंडके राजा डरे और कई सन्मुख आकर आधीन हुए। डरे हुए राजाओंको समझाकर तथा विद्रोहियोंको वशकर सबसे भेंट व चक्रवर्तीके लिये कन्याएं लीं। और म्लेच्छ राजाओंके साथ वापिस लौटा। ऊपर जिस गुफाके बारेमें कहा गया है उस गुफाके खोलनेसे इतनी गर्मी निकली कि वह छह माहमें शांत हुई थी। वापिस आकर म्लेच्छ राजाओंसे चक्रवर्तीका परिचय कराया। इस गुफाका नाम तमिस्रा है। इसकी ऊँचाई आठ योजन और चौड़ाई बारह योजनकी है। इसके किवाड़ वज्रमय

हैं जिन्हें सिवा चक्रवर्तीके सेनापतिके दूसरा नहीं खोल सकता। इस गुफाके खुल जानेपर चक्रवर्ती उसमें जानेको तैयार हुआ, पर उसमें अंधकार बहुत था अतएव चक्रवर्तीकी आज्ञासे पुरोहितके साथ सेनापतिने **कॉकिणी** और **चूड़ामणि** नामक रत्नोंसे गुफाकी दोनों दीवालोंपर सूर्य और चंद्रके चित्र बनाये जिनसे प्रकाश हुआ। सूर्यके चित्रसे दिनके समान और चंद्रके चित्रसे चांदनीके समान प्रकाश होने लगा। फिर दो मार्गोंमें विभाजित होकर चक्रवर्तीकी सेना चक्रवर्ती सहित उस गुफामें चलने लगी। गुफामेंसे सिंधु नदी बहती है अतएव सेना सिंधु नदीके दोनों किनारोंपर चलती थी। जब आधी गुफा तय हो चुकी तब चक्रवर्तीने अपनी सेना ठहरा दी। यहांपर गुफाकी दोनों दिवालोंमे दो नदियां और निकली हैं जिनका नाम **निमग्नजला** और उन्मग्नजला है। दोनों नदियोंका स्वभाव एक दूसरेसे विरुद्ध है। अर्थात् निमग्नजला नदी तो प्रत्येक वस्तुओंको अपने तहमें लेजाती है और उन्मग्नजला वस्तुओंको ऊपर ला फेंकती है। ये दोनों नदियों सिंधु नदीमें आकर मिल गई हैं। यहीं पर भरतने अपने डेरा दिये। और इनको पार करनेके लिये अपने **सिलावट** रत्नको पुल बनानेकी आज्ञा दी। उसने देवोंके द्वारा वनोंसे लडकीके लट्ठे मंगाकर उनके खंभे नदियोंमें खड़े किये और पुल बनाया; जिस परसे चक्रवर्तीकी सेना पार हुई। और कई दिनोंमे उस गुफाको पारकर बाहिर निकली। सेनापतिने पहिले गुफाकी दक्षिण ओरका (इस पारका) पश्चिम म्लेच्छ खंड जीता था। भरतने उत्तरकी

ओरका पश्चिम म्लेच्छ खंड जीता और मध्यम खंड जीतनेको चले। इस खंडके कई राजाओंको वश किया; परन्तु चिलात और आवर्त नामके राजा युद्ध करनेको तैयार हुए। इन दोनोंके मंत्रियोंने चक्रवर्तिकी सामर्थ्यका वर्णन सुनाकर युद्ध करनेसे रोका तब इन दोनोंने अपने कुल देव मेघमुख और नागमुखकी आराधना की। इन दोनों देवोंने मेघका रूप धारण किया और वायु चलाई तथा मेघमुखने पानीकी वर्षा इतनी अधिक की कि भरतकी सेना उसमें डूबने लगी। परन्तु तो भी भरतके तंबूमें जलका कुछ भी असर न हुआ। भरतने इस समय अपनी सेनाकी रक्षाके लिये नीचे चर्मरत्न बिछाया और ऊपर छत्ररत्न लगाया। ये दोनों रत्न बारह योजनके थे। इन रत्नोंका अंडाकार तंबू बन गया था जिसमें चक्ररत्नका प्रकाश होता था। इसीके भीतर सेना सात दिन तक रही थी। इसके भीतर सेन पति और बाहिर जयकुमार रक्षा करते थे। इस उपद्रवसे बचानेके लिये सिलावट रत्नने कपड़ेके अनेक तंबू व घासकी झोपड़ियां तथा आकाशगामी रथ बनाये थे। चक्रवर्तिकी आज्ञासे गणबद्ध जातिके व्यंतर देवोंने नागमुखको हटाया और जयकुमारने दिव्य शस्त्रोंसे उन नागमुख और मेघमुखको जीता। अंतमें वे दोनों म्लेच्छ राजा चक्रवर्तिके वश हुए। यहांसे चलकर भरत, सिंधु नदीके किनारे किनारे जहांसे सिंधु नदी निकली है उस हिमवान् पर्वतके सिंधु द्रहके पास पहुंचा यहांपर सिंधु देवीने भरतका अभिषेक किया और भद्रासन नामक सिंहासन दिया। यहांसे चलकर हिमवान् पर्वतके किनारोंको जीतते हुए हिमवान् पर्वतके हिमवान् शिखरपर पहुंचे।

वहां भरतने अपने दिव्यास्त्रोंकी पूजा की और उपवास किया और पवित्र डाभकी शय्यापर सोये। फिर अपना अमोघ नामक वाण हिमवान् शिखरपर छोड़ा वह वाण इस शिखरके अधिष्ठाता देवके रहनेकी जगहपर गिरा इससे देवने चक्रवर्तिका आना समझ वह भक्तिके साथ भक्तिके साथ भरतके पास आया और आधीनता स्वीकार कर भरतका अभिषेक किया। तथा हरिचंदन नामक चंदन भरतको भेंटमें दिया। यहांसे भरत **वृषभाचल** नामक पर्वतको देखनेके लिये लोटे। यह पर्वत सौ योजन ऊंचा है। और तलहटीमें सौ योजन तथा ऊपर पचास योजन चोड़ा है। इस पर्वतके किनारेकी शिलाकी दिवालपर चक्रवर्ति अपना नाम लिखनेको तैयार हुआ क्योंकि चक्रवर्तिकी दिग्विजय समाप्त हो चुकी थी। जब वह कांकिणी रत्नसे नाम लिखने लगा तब उसने देखा कि वहांपर इतने चक्रवर्तियोंके नाम लिखे हुए हैं कि उसे अपना नाम लिखनेकी जगह ही नहीं है। तब यह सोचकर कि मेरे समान इस अनादि पृथ्वीपर असंख्य चक्रवर्ती हो गये हैं भरतका अभिमान खंडित हुआ। फिर उसने किसी एक चक्रवर्तीका नाम मिटा कर उसके स्थानपर अपने नामकी प्रशस्ति इस भांति लिखी- "स्वस्तिश्री इक्ष्वाकु कुलरूपी आकाशमें चंद्रमाके समान उद्योत करनेवाला चारों दिशाओंकी पृथ्वीका स्वामी मैं भरत हूं। मैं अपनी माताके सौ पुत्रोंमें ज्येष्ट पुत्र हूं। राज्यलक्ष्मीका स्वामी हूं। मैंने समस्त देव, विद्याधर और राजाओंको वश किया है। मैं वृषभदेवका पुत्र, सोलहवां कुलकर, मान्य, शूरवीर और चक्रवर्तियोंमें मुख्य प्रथम चक्रवर्ती हूं। जिसकी सेनामें अठारह करोड

घोड़े और चौरासी लाख हाथी हैं। जिसने समस्त पृथ्वी वश की है। जो नाभिराजाका पौत्र ऋषभदेवका पुत्र और छहों खंडोंकी पृथ्वीका पालक है ऐसे उक्त भरत द्वारा इस पर्वतपर जगतमें फैलनेवाली कीर्ति स्थापन की गई" । इस प्रकारकी प्रशस्ति भरतने उस शिलापर लिखी। इस प्रशस्तिपर देवोंने फूलोंकी वर्षा की थी। फिर भरत हिमवान्के उस स्थानपर पहुंचे जहासे गंगा नदी निकली है। वहापर गंगा नदीकी स्वामिनी गगादेवीने भरतका अभिषेक किया और एक सिंहासन भेंटमें दिया। यहांसे चलकर भरत फिर विजयार्द्ध पर्वतकी तलहटीमें आकर ठहरा और पश्चिमकी गुफाके समान विजयार्द्धकी पूर्व गुफाको खोलनेकी तथा पूर्व दिशाके म्लेच्छ खंडको जीतनेकी सेनापतिको आज्ञा दी तबतक चक्रवर्ति, विजयार्द्धकी तलहटीमें ही ठहरा था। यहींपर विजयार्द्ध पर्वतपर दक्षिण और उत्तरमें रहनेवाले विद्याधरोंने आकर भरतकी आधीनता स्वीकार की और अनेक प्रकारकी भेंटें दीं। तथा विद्याधरोंके अधिपति **नमि, विनमि** नामक विद्याधरोंने अपनी बहिन सुभद्राके साथ महाराज भरतका विवाह किया। भरतने अपने सेनापतिको जिस गुफाके खोलेनेकी आज्ञा दी थी उसका नाम कांडकप्रपात था। उस गुफाको खोलकर तथा पूर्व खंडके म्लेच्छोंको जीत कर छह मासमें सेनापति भी लोट आया। अब चक्रवर्ती उत्तर भरत खडसे दक्षिण भारतकी ओर उक्त कांडकप्रपात गुफाके मार्गद्वारा सेना सहित चले। गुफाका मार्ग तय हो जानेपर गुफाके दक्षिण द्वारपर आये। यहां गुफाके रक्षक नाट्यपाल नामक देवने भरतकी आधीनता स्वीकार की व पूजा की। यहींपर भरतकी उत्तर

भरतखंडकी विजय समाप्त हुई और इसीके साथ साथ भरतकी दिग्विजय भी समाप्त हुई।

(१७) दिग्विजयमें भरतको साठ हजार वर्ष लगे थे।

(१८) दिग्विजयसे लौटकर भरत कैलाश पर्वतपर गया और वहाँ भगवान् ऋषभदेवकी स्तुति व पूजा की तथा धर्मका उपदेश सुना।

(१९) कैलाशसे चलकर भरत अपनी राजधानी अयोध्या आकर जब नगर प्रवेश करने लगे तब चक्रवर्तीका चक्ररत्न नगरके बाहिर ही रह गया। इस पर भरतको आश्चर्य हुआ और अपने पुरोहितसे इसका कारण पूछा। पुरोहितने कहा-यद्यपि आप दिग्विजय कर चुके हैं तो भी कुछ राजाओंको वश करना बाँकी है। और वे राजा आपके छोटे भाई हैं। इसपर भरतने अपने भाइयोंपर क्रोध किया परंतु पुरोहितके समझानेसे कुछ शांत हुए। और दूतोंको अपने भाइयोंके पास भेजकर आधीन होनेके समाचार कहलाये। परंतु छोटे भाइयोंने आधीनता स्वीकार न की किंतु भगवान् ऋषभदेवके पास आकर कहा कि हम आपकी दी हुई पृथ्वीका उपभोग करते हैं तो भी भरत हमें अपने आधीन करना चाहता है। हम भरतकी इस आज्ञाको स्वीकार नहीं कर सकते। भगवान ऋषभने उन्हें धर्मोपदेश देकर समझाया कि वह चक्रवर्ति है, यदि तुम राजा होकर रहोगे तो तुम्हें उसके वश होना ही पड़ेगा। यदि अभिमान रखना चाहते हो तो मुनि बनो इसपर भरतके सब छोटे भाइयोंने दीक्षा धारण की। केवल बाहुबलीने न तो दीक्षा ली और न भरतकी आज्ञा ही स्वीकार

की। उक्त दीक्षित छोटे भाइयोंके राज्य भरतके आधीन हुए। और बाहुबली स्वतंत्र रहे।

(२०) दूतको भेजकर भरतने बाहुबलीको समझाया। परंतु बाहुबली नहीं माने, अतमें दोनोंका युद्ध निश्चय हुआ। और दोनों ओरकी सेना युद्धके लिये तैयार हुई।

(२१) जब दोनों ओरसे युद्धका निश्चय हो गया और युद्ध होनेका प्रारंभ समय बिलकुल पास आगया तब दोनों ओरके मंत्रियोंने विचार किया कि भरत और बाहुबली दोनों चरमशरीरी-इसी शरीरसे मोक्ष जानेवाले-हैं अतएव इन दोनोंकी तो कुछ हानि नहीं होगी किंतु सेना निरर्थक कटेगी, यह विचारकर मंत्रियोंने निश्चय किया कि सेनाका परस्पर युद्ध न कराकर इन दोनोंका-भरत० और बाहुबलीका-ही युद्ध कराया जाय और अपना यह निश्चय दोनों राजाओंसे स्वीकार कराया।

(२२) मंत्रियोंने दोनों राजाओंके तीन युद्ध निश्चय किये-दृष्टियुद्ध १, जलयुद्ध २ और मल्लयुद्ध ३

(२३) इन तीनों युद्धोंमें बाहुबलीने भरत चक्रवर्तिको हराया। और मल्लयुद्धमें बाहुबलीने भरतको नीचे न पटककर कंधेपर बिठला लिया।

(२४) भरतके इस प्रकार हारनेसे उसे क्रोध हुआ और उस क्रोधके कारण उसने बाहुबली पर चक्र चलाया। परन्तु चक्ररत्न चक्रवर्तिके कुलका नाश नहीं करता इसलिये चक्रने बाहुबलीकी प्रदक्षिणा दी और बाहुबलीके समीप आकर ठहर गया।

(२५) अपने कुल-घात करनेका भरतका प्रयत्न देख सबने भरतकी निंदा की और बाहुबलिने भरतको कंधेपरसे उतारकर यह कहते हुए कि, आप बड़े बलवान् हैं, उच्चासनपर बिठाया।

(२६) भरतका इस प्रकार लज्जाजनक निंद्य कृत्य देखकर बाहुबली संसारकी अनित्यता विचारने लगे और अंतमें उन्होंने भरतको कहा कि अब मैं इस पृथ्वीको नहीं चाहता, इसे तुम ही रखो, मैं तप करूँगा।

(२७) क्रोध शांत होनेपर भरतको अपने इस कुलनाशक कार्यका बड़ा पश्चात्ताप हुआ। और वे अपनी निंदा करने लगे।

(२८) बाहुबलीके दीक्षा ले लेनेपर भरतने राजधानीमें प्रवेश किया। यहाँपर सब देवों और राजा महाराजाओं द्वारा भरतका राज्याभिषेक किया गया। इस समय भरतने बडा भारी दान किया था।

(२९) भरत चक्रवर्तीकी संपत्ति इस भाँति थी—

(१) चौरासी लाख हाथी (२) चौरासी लाख रथ (३) अठारह करोड़ घोड़े (४) चौरासी करोड पैदल सेना (५) छहों खंड पृथ्वीका राज्य (६) एक करोड़ चावल पकानेके हंडे (७) एक लाख करोड़ हल (८) तीन करोड़ गौशालायें। (९) काल १ महाकाल २ नैसर्प ३ पांडुक ४ पद्म ५ माणव ६ पिंगल ७ शंख ८ सर्वरत्न ९ ये नो निधियॉं थीं (१०) चक्र १ छत्र २ दंड ३ खड्ग ४ मणि ५ चर्म ६ कांकिणी ७ ये सात निर्जीव रत्न चक्रवर्तिके यहां उत्पन्न हुए थे।

(३०) भरत चक्रवर्तिका शरीर समचतुरस्रसंस्थान था अर्थात् उनके सर्व आंगोपांग यथायोग्य थे।

(३१) भरत वज्रवृषभनाराच संहननके धारण करनेवाले थे अर्थात् उनका शरीर वज्रमय, अभेद्य था।

(३२) भरतके शरीरमें चौंसठ शुभ लक्षण थे।

(३३) भरतकी आज्ञामें बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजा और बत्तीस हजार ही देश थे। तथा अठारह हजार आर्यखंडके म्लेच्छ राजा आज्ञामें थे।

(३४) भरतकी छयानवे हजार रानियां थीं जिनमें बत्तीस हजार उच्च कुल जातिके मनुष्योंकी कन्याएँ थीं, बत्तीस हजार म्लेच्छोंकी कन्याएँ थीं। और बत्तीस हजार विद्याधरोंकी कन्याए थीं।

(३५) भरतका शरीर वैक्रियिक था अर्थात वे अपने ही समान अपनी कई मूर्तियाँ बना लेते थे।

(३६) भरतकी मुख्य रानीका नाम सुभद्रा था।

(३७) महारानी सुभद्रामें इतना बल था कि वह रत्नोंको चुटकीसे चूर्ण करडालती थी और उनसे चौक पूरती थी।

(३८) भरतके राज्यमें बत्तीस हजार नाटक, बहत्तर हजार नगर, छयानवे करोड़ गॉव, निन्यानवे हजार द्रोणमुख (बंदर), अड़तालीस हजार पत्तन, सोलह हजार खेट और छप्पन अंतर्द्वीप थे। जहॉंके निवासी कुभोगभूमियॉं थे और चौदह हजार संवाह (पर्वतोंपर बसनेवाले शहर) थे। रत्नोंके व्यापारके स्थान सातसो थे। अट्ठाईस हजार वन थे।

(३९) सेनापति, गृहपति, हाथी, घोड़ा, स्त्री, सिलावट और पुरोहित ये सात सजीव रत्न थे।

(४०) भरतकी निधियों और रत्नोंकी रक्षार्थ गणबद्ध जातिके सोलह हजार व्यंतर देव थे।

४१) चक्रवर्तीके महलके कोटका नाम क्षितिसार था और राजधानी के बड़े दरवाजेका नाम **सर्वतोभद्र** था। महलका नाम **वैजयंत**, डेरे खड़े करनेके स्थानका नाम **नंद्यावर्त**, **दिक्स्वामी** नामकी सभाभूमि और **सुविधि** नामक मणियोंकी छड़ी थी। नृत्यशालाका नाम **वर्द्धमान**, भंडारका नाम **कुबेरांत** था और **घर्मान्त** (जहां गर्मीमें पानी बरसा करता था) तथा वर्षा ऋतुमें रहने योग्य **ग्रहकूटक** नामक राजभवन थे। चक्रवर्तिके स्नानघरका नाम **जीमूत**, कोठारका नाम **वसुधारक** था।

चक्रवर्तिकी मालाका नाम **अवतंसिका**, **देवरम्य** नामक कपड़ेका तंबू **सिंहवाहिनी** नामक शय्या और सिंहासनका **अनुत्तर** नाम था। चक्रवर्तीके चमरोंका **अनुपमान** और छत्रका नाम **सूर्यप्रभ** था। भरतकी अन्य सामग्रीके नाम इस प्रकार थे।

(१) कुंडल-विद्युत्प्रभ (२) खड़ाऊं-विषमोचिका। (३) कवच-अभेद्य (४) रथ-अजितंजय (५) धनुष-वज्रकांड (६) बाण अमोघ-(७) शक्ति-वज्रतुंडा (८) भाला-सिंहाटक (९) छुरी-लोहवाहिनी (१०) मनोवेग नामक कणय (शस्त्रविशेष) (११) तरवार-सौनंद (१२) खेट (हथियार)-भूतमुख (१३) चक्ररत्न-सुदर्शन (१४) दंडरत्न-चंडवेग (१५) चर्मरत्न-वज्रमय

(१६) चिंतामणी रत्न—चूड़ामणि (१७) कॉकिणी रत्न-चिंताजननी।

(४२) भरतके सेनापतिका नाम अयोध्य, पुरोहितका नाम बुद्धिसागर, गृहपतिरत्नका नाम कामवृष्टि, सिलावट रत्नका नाम भद्रमुख, हाथीका नाम विजयपवत, घोड़ेका नाम पवनंजय था।

(४३) चक्रवर्तिके वादित्रोंमें प्रसिद्ध प्रसिद्ध वाजे इस भाँति थे।

(१) आनंदिनी नामकी वारह भेरिया

(२) विजयघोष नामके वारह नगाड़े

(३ गंभीरावर्त नामके चौवीस शख

(४४) चक्रवर्तीकी अड़तालीस करोड़ ध्वजायें थीं।

(४५) चक्रवर्ति महाकल्याण नामक दिव्य भोजन करते थे। कोई न पचा सके ऐसे अमृतगर्भ नामक पदार्थोंका वे भक्षण करते थे। उनके स्वाद करने योग्य अमृतकल्प नामक पदार्थ थे और पीनेकी चीजोंका नाम अमृत था।

(४६) भरतने अपनी लक्ष्मीका दान करनेके लिये ब्राह्मण वर्णकी स्थापना की। अर्थात् उस समय जो व्रती श्रावक थे जिनके चित्त कोमल, धर्मरूप, और दयायुक्त थे उनका एक न्यारा ही वर्ण बनाया और उस वर्णका नाम ब्राह्मण रखा। ऐसे पुरुषोंकी परीक्षा भरतने इस प्रकार की थी कि अपने राजमहलके चौकमें दूब वगैरह घाँस बोदी और अपने आधीनके राजा महाराजाओंको अपने सदाचारी इष्ट, मित्र, सेवक व कर्मचारियों सहित बुलाया। इनमेंसे जिन लोगोंने उस दूब वगैरह वनस्पतिके ऊपरसे जाना स्वीकार नहीं किया उन लोगोंको ब्राह्मण बनाया, उनका

(८) भूतोंको नाचते हुए देखना सूचित करता है कि अगाड़ी व्यंतरोंको ही लोग देव–ईश्वर मानेंगे।

(९) सरोवरको किनारे किनारे अच्छी तरह जलसे भरे हुए और बीचमें सूखे हुए देखनेका फल यह है कि धर्म नीच देशोंमें रहेगा।

(१०) रत्नोंकी राशिको धूलसे भरा हुआ देखनेका फल यह है कि पंचम कालमें कोई शुद्धध्यानी न होगा।

(११) श्वानकी पूजा तथा द्वारा पूजाका नैवेद्य भक्षण होते हुए देखनेका फल यह है कि गुणवान् पात्रके समान अव्रती श्रावकोंका सत्कार होगा।

(१२) शब्द करते हुए तरुण वृषभका देखना बतलाता है कि पंचमकालमें जवान मनुष्य ही मुनिव्रत स्वीकार करेंगे, वृद्ध पुरुष नहीं।

(१३) चंद्रमाको सफेद परिमंडलयुक्त देखनेका फल यह है कि साधुओंको मनःपर्ययज्ञान व अवधिज्ञान न होगा।

(१४) दो बैलोंको साथ साथ जाते देखनेका फल यह है कि साधु पंचम कालमें एकाकी नहीं रहेंगे।

(१५) सूर्यका आच्छादित देखना बतलाता है कि पंचम कालमें केवलज्ञान नहीं होगा।

(१६) सूखे वृक्ष देखनेका फल यह है कि पंचम कालमें मनुष्य प्रायः दुराचारी होंगे।

(१७) सूखे पत्तेके देखनेका फल यह है कि पंचम कालमें औषधियाँ रस रहित हो जावेंगी।

(४८) भरत बड़े धर्मात्मा भव्य और तपस्वी थे। भरतके इन गुणोंके संबंधमें नीचे लिखी घटनाएँ प्रसिद्ध हैं।

(१) भरतने अपने महल व नगरके द्वारोंपर सुवर्ण और रत्नोंकी छोटी २ घटियाँ लगवाई थीं और बड़े २ घंटे लगवाये थे। इनपर भगवान्‌की मूर्ति खोदी गई थी। इनके लगानेका कारण यह था कि जब इन घंटियोंका स्पर्श महाराज भरतके मुकुटसे होता, त्यों ही भरतको भगवान्‌के चरणोंका ध्यान आ जाता था।

(२) भरत जब सामायिक करते थे तब ध्यानके कारण उनका शरीर इतना क्षीण हो जाता था कि उनके कड़े हाथोंमेंसे अपने आप निकल पड़ते थे।

(३) एक किसानने आकर भरतसे पूछा कि महाराज मैंने सुना है कि आप राज्य करते हुए भी बड़े भारी धर्मात्मा और साधुओंके समान तपस्वी हैं सो ये दो विरोधी कार्य राज्य करना और तप करना आप कैसे करते होंगे? तब भरतने उसके हाथमें तेलका कटोरा देकर अपने कटकको देखनेके लिये भेजा व आज्ञा दी की यदि एक भी बूंद तेल गिरेगा तो फाँसीकी सजा दी जावेगी। इधर अपने कटकमें चक्रवर्तीने अनेक प्रकार नाटक कराये। परंतु वह किसान कटककी ओर बिलकुल नहीं देखता था उसका ध्यान सिर्फ तेलके कटोरेकी ओर था। जब वह किसान घूम कर भरतके समीप आया तब भरतने पूछा कि तुमने मेरे कटकमें क्या देखा तब वह

१, २, इन कथाओंका वर्णन आदिपुराणमें नहीं है।

पाठ आठवाँ।

युवराज बाहुबली (प्रथम कामदेव)

(१) भगवान् ऋषभदेवके दूसरे पुत्र बाहुबलीका जन्म महारानी सुनंदाके गर्भसे हुआ था।

(२) बाहुबली सबसे पहिले कामदेव थे। इसलिए इनका स्वरूप इतना सुंदर था कि इनके समान उस समय कोई भी मनुष्य सुंदर न था।

(३) बाहुबली चरम-शरीरी थे अर्थात् इसी भवसे मोक्ष जानेवाले थे।

(४) भगवान् ऋषभदेव जब तप करनेको उद्यत हुए तब बाहुबलीको भरत चक्रवर्तीके युवराज पद दिया था और अभिषेक किया था।

(५) बाहुबलीका रंग हरा था।

(६) भरत जब दिग्विजय करके वापिस लौटे तब पोदनापुर [दक्षिण प्रांत] के राजा बाहुबली ही पृथ्वीपर ऐसे राजा रह गये थे कि जिन्होंने भरतकी आज्ञा स्वीकार नहीं की थी।

(७) भरतकी आधीनता स्वीकार न करनेके कारण बाहुबलीको भरतसे युद्ध करनेको तैयार होना पड़ा और दोनोंने अपनी सेना तैयार की परन्तु दोनों ओरके मंत्रियोंके निश्चयसे सेना द्वारा युद्ध बंद कर दिया गया था। किंतु दोनोंका परस्पर युद्ध होना निश्चय हुआ।

(८) बाहुबली और भरतके आपसमें तीन प्रकारके युद्ध हुए— जलयुद्ध, दृष्टियुद्ध और बाहूयुद्ध।

(९) तीनोंहीमें बाहुबलीकी जय हुई। परंतु मल्ल युद्धमें बाहुबलीने भरतको बड़ा भाई समझ जमीन पर नहीं पटका किंतु कंधे पर बैठाया। इसपर क्रोधित होकर भरतने बाहुबलीपर चक्र चलाया। परंतु चक्रने भी बाहुबलीकी प्रदक्षिणा दी और बाहुबलीके पास आकर ठहर गया।

(१०) अपने बड़े भाई द्वारा अपना घात करनेका प्रयत्न देख बाहुबलीको वैराग्य उत्पन्न हुआ और उन्होंने भरतको यह कहकर कि 'आप ही इस विनाशीक पृथ्वीके स्वामी बनें' दीक्षा धारण की और अपना राज्य अपने पुत्र महाबलको दिया।

(११) बाहुबलीने बड़ा भारी तप किया था। उनके तपके संबंधमें पूर्वके ग्रंथकार लिखते हैं कि "बाहुबलीने प्रतिमा योग (एक वर्षतक एक ही जगह खड़े रहना) धारण किया था। इनके आस-पास वृक्ष व लतायें उगी थीं। सर्पोंने अपनी बामी बनाई थीं। अनेक सर्प इनके पास फिरा करते थे। बाईसों प्रकारकी परीषहोंको इन्होंने अच्छी तरह सहा था। अनेक ऋद्धियाँ इनके शरीरमें उत्पन्न हो गई थीं। बाहुबलीने महाउग्र, दीप्त, तप्त घोर आदि कई प्रकारके तप किये थे। इनके तपके प्रभावसे जिस वनमें ये थे उस वनके सिंहादि विरोधी जीवोंने भी विरोध-भाव छोड़कर आपसमें मैत्रीभाव धारण किया था।

(१२) जिस दिन बाहुबलिका एक वर्षका उपवास पूर्ण हुआ उसी दिन भरतने आकर पूजा की थी भरतकी पूजा करनेके पहिले बाहुबलीके हृदयमें एक सूक्ष्म रागभावकी शंका थी कि मेरे द्वारा भरतको युद्धमें कष्ट पहुँचा है। यही रागभाव केवलज्ञा

उत्पन्न होनेमें बाधा डाल रहा था सो भरतकी पूजा करनेसे बाहुबलीका वह भाव नाशको प्राप्त हो गया और बाहुबलीको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ।

(१३) केवलज्ञान उत्पन्न होनेपर भरतने फिर केवलज्ञानकी महा पूजा की और इंद्रोंने व देवोंने आकर भी पूजा की।

(१४) केवलज्ञान युक्त होनेपर भगवान् बाहुबलीने पृथ्वीपर विहार किया और प्राणियोंको उपदेश दिया।

(१५) विहार करके अंतमें भगवान बाहुबली कैलाश पर्वत-पर विराजमान हुए और वहींसे मोक्ष गये।

पाठ नौवाँ।

महाराज जयकुमार और महारानी सुलोचना।

(१) महाराज जयकुमार कुरुवंशके राजा **सोमप्रभ** (हस्तिनागपुरके नरेश) के पुत्र थे। जयकुमारकी माताका नाम **लक्ष्मीवती** था।

(२) जब महाराज सोमप्रभने अपने छोटे भाई श्रेयांसके साथ दीक्षा धारण की तब जयकुमारको राज्य देकर इनका राज्याभिषेक किया।

(३) महाराज सोमप्रभ **महामंडलेश्वर** थे। इसीलिये इनके पुत्र जयकुमार भी महामंडलेश्वर हुए।

(४) जयकुमारके चौदह छोटे भाई और थे।

(५) एक दिन जयकुमार वनमें **शीलगुप्त** नामक मुनिराजके पास धर्म श्रवण करने गये थे। इनके साथ उस वनमें रह-

नेवाली नाग नागिनीने भी धर्म श्रवण किया। कुछ दिनों बाद वह नाग मरकर नागकुमार जातिका देव हुआ। और नागिनी काकोदर नामक विजातीय सर्पके साथ रहने लगी। महाराज जयकुमार जब दुवारा उस वनमें गये और नागिनीको उस विजातीय सर्पके साथ देखा तब उसे व्यभिचारीणी समझ इनको क्रोध हुआ और अपने हाथके कमल पुष्प द्वारा उसका तिरस्कार किया। वे दोनों वहाँसे भागकर जब वस्तीमें आये तो दुष्ट मनुष्योंने उन दोनोंको मार डाला। वे दोनों मरकर नागिनी तो अपने पूर्व स्वामी जो नागकुमार जातिका देव हुआ था उसकी स्त्री हुई और सर्प गंगा नदीमें कालो नामक जलदेवी हुआ। नागकुमारकी स्त्री (पूर्वभवकी सर्पिणी) ने अपने पतिसे जयकुमार द्वारा तिरस्कार किये जाने और फिर नगरवासियों द्वारा मारे जानेके समाचार कहे, इसपर वह क्रोधित होकर रात्रिके समय जयकुमारको मारने आया। इधर जयकुमार भी अपनी रानी श्रीमतसे उस व्यभिचारिणी नागिनकी बात कह रहा था। सो उस देवने सुनकर मारनेका विचार बदल दिया और जयकुमारसे अपने कपटकी बात कह जयकुमारकी प्रशंसा करने लगा और कह गया कि उचित समय पर आप मुझे याद करना।

(६) जयकुमारने जब सुना कि भारतकी विजयको जाते हैं तब ये भरतकी सेनामें आकर शामिल हुए और चक्रवर्तीके साथ उत्तर भारतकी विजयको गये।

(७) उत्तर भारतकी विजय करते हुए मध्यम खंडमें जब चिलात और आवर्त नामक दो म्लेच्छ राजा भरतसे लड़नेको

उद्यत हुए और उन्होंने अपने कुलदेव नागमुख व मेघमुख द्वारा भरतकी सेनामें जल वर्षा कर उपद्रव किया तब सेनाके तंबूकी बाहिरसे जयकुमारने रक्षा की थी और फिर दिव्यास्त्रोंद्वारा इन दोनों देवोंको जीता था। इसपर प्रसन्न होकर चक्रवर्तीने इन्हें **मेघेश्वरका उपनाम** दिया तथा मुख्य शूरवीरके स्थानपर नियुक्त किया।

(८) काशीनरेश महाराज अकंपनने जब अपनी पुत्री सुलोचनाका स्वयंवर किया तब जयकुमार भी गये थे व अन्य कई विद्याधर तथा राजकुमार आये थे। महाराज भरतके ज्येष्ठ पुत्र अर्ककीर्ति भी उस स्वयंवरमें आये थे। परन्तु सुलोचनाने जयकुमारको ही वरमाला पहिनाई थी। इस युगमें यही पहिला स्वयंवर हुआ और यहींसे स्वयंवरकी रीति शुरू हुई।

(९) सुलोचना सुन्दरी, स्वरूपवती, शीलवती और विदुषी स्त्री थी।

(१०) सुलोचनाका जयकुमारको वरमाला पहिनाना महाराज भरतके ज्येष्ठ पुत्र अर्ककीर्तिको बडा खटका और वह दुर्मर्षण नामक दुष्ट पुरुषके उसकानेसे जयकुमारसे लड़नेको उद्यत हुआ। जयकुमारने भी यह कहकर समझाया कि आप हमारे स्वामी महाराज भरतके पुत्र हैं, आपको अन्याय मार्गसे लड़ना उचित नहीं है जब सुलोचनाने स्वयं ही मुझे वरमाला पहिनाई है तब आपका क्रोधित होना अन्याय है। इसी प्रकार अनवद्यमति नामक अर्ककीर्तिके मंत्रीने भी बहुत समझाया पर वह नहीं माना। लाचार होकर जयकुमारने युद्ध किया। इस युगमें आर्यखंडका

सबसे पहिला युद्ध यही हुआ। इसमें जयकुमारकी जय हुई, और उसने अर्ककीर्ति व उसके साथ विद्याधरों और राजाओंको बांधकर सुलोचनाके पिता अर्कपनके पास भेज दिया जिन्होंने उन्हें छोड़ा व अर्ककीर्तिको शांत करनेके लिये अपनी छोटी बहिन **अक्षमाला** उसे दी।

(११) जबतक युद्ध पूर्ण नहीं हुआ सती सुलोचनाने आहारका त्याग किया और भगवान्‌की मूर्तिके सन्मुख खड़ी रहकर ध्यान किया।

(१२) युद्ध पूर्ण हो जाने पर जब, जयकुमार, सुलोचनाके सहित अकंपन महाराजके घरसे अपने घरको जाने लगे तब रास्तेमें ठहर कर जयकुमार, महाराज भरतसे मिलने गये। जयकुमारके मनमें शंका थी कि शायद अर्ककीर्तिसे युद्ध करनेके कारण चक्रवर्ती नाराज होंगे पर भरतने जयकुमारका बहुत आदरसत्कार किया।

(१४) चक्रवर्तीसे मिलकर जब जयकुमार आये तब गंगा नदीमें उस काली देवीने जो जयकुमारके कमरसे तिरस्कार किये गये सर्पका जीव था जयकुमारके हाथीके पाँवोंको पकड़ लिया और बहाने लगी पर जयकुमार और सुलोचनाके भगवानका ध्यान करनेसे गंगा देवीने आकर उस समय जयकुमारको बचाया।

(१५) जयकुमारने कई वर्षों तक राज्य किया और महारानी सुलोचनाके साथ सांसारिक सुख भोगे। एक दिन महलपर बैठे हुए चारों ओर देख रहे थे इसी समय किसी विद्याधरका विमान आकाशमें देखकर दोनोंको जातिस्मरण नामक ज्ञान उत्पन्न

वंशका स्थापक और दीक्षा लेनेके बाद भगवान् ऋषभका गणधर हुआ, अंतमें मोक्ष गया।

(४) हरि–हरिवंशका स्थापक, महा मंडलेश्वर राजा हुआ।

(५) अकपन–नाथ वंशका स्थापक, सुलोचनाका पिता, सबसे पहिले स्वयंवरकी पद्धतिको चलानेवाला, काशीका नरेश था दीक्षा लेकर मोक्ष गया। इसे भरत पिताके समान मानते थे।

(६) काश्यप–उग्र वंशका स्थापक, महा मंडलेश्वर राजा था। इसका उपनाम मघवा था।

(७) कच्छ–महाकच्छ–इन दोनोंको भगवान् ऋषभने अधिराज बनाया था। ये दोनो भगवान्के स्वसुर थे। दीक्षा लेनेपर ये दोनो भगवान्के गणधर हुए। पहिले ये तपसे भ्रष्ट हो गये थे। पर पीछे फिर तप धारण किया था।

(८) मरीच–भगवान् ऋषभका पौत्र सांख्य मतका प्रवर्तक।

(९) नमि, विनमि ये दोनो भगवान् ऋषभदेवके रिस्तेदार थे। भगवान्ने अपने कुटुम्बियोंको राज्य वितरण कर जब तप धारण किया तब ये भगवान्से राज्य मांगने आये। भगवान् मौन धारण कर तप कर रहे थे। इन्होंने बहुत प्रार्थनायें कीं फिर धरणेन्द्रने आकर इन्हे विजयार्द्ध पर्वतके विद्याधरोंकी दक्षिण और उत्तर श्रेणीका राजा बनाया। पहिले ये भूमिगोचरी थे परंतु धरणेन्द्रने कई विद्यायें दे कर इन्हे विद्याधर बनाया था। फिर गणधर हुए और मोक्ष गये।

(१०) **श्रेयांस**-हस्तिनागपुरके महा मडलेश्वर राजा सोमप्रभके भाई कुरुवंशी थे। भगवान्‌को सबसे पहिले आहार देकर इसयुगमें मुनियोंके आहारदानकी प्रवृत्ति चलाने वाले हुए।

(११) **अनंतवीर्य**-भगवान् ऋषभदेवके पुत्र-भरतके छोटे भाई इस युगमें सबसे पहिले मोक्ष गये।

(१२) **श्रुतकीर्ति**-इस युगमें सबसे पहिले श्रावकके व्रत लेने वाले गृहस्थ।

(१३) **प्रियव्रता**-इस युगमें सबसे पहिले श्रावकके व्रत लेने वाली स्त्री।

(१४) श्रुतार्थ, १ सिद्धार्थ २ सर्वार्थ ३ सुमति ४ ये चारों महामंडलेश्वर काशीनरेश अकंपनके मंत्री थे।

(१५) **हेमांगदत्त**-महामडलेश्वर काशी नरेश अकंपनका ज्येष्ठ पुत्र था।

(१६) **अर्ककीर्ति**-महाराज भरत चक्रवर्तिके राज्यका स्वामी उनका ज्येष्ठ पुत्र था। राजा अकंपनका जमाई था। स्वयंवरमें सुलोचनाने जो जयकुमारको वरमाला पहिनाई थी उसीपरसे इसने अन्याय पूर्वक जयकुमारसे युद्ध किया जिसमें यह हारा था।

(१७) **अनवद्यमति**-ऋषभदेवके ज्येष्ठ पुत्र अर्ककीर्तिका मंत्री था। इसने जयकुमारसे लड़नेके लिये अर्ककीर्तिको बहुत रोका पर वह नहीं माना।

(१८) **महाबल**-बाहूबलीका ज्येष्ठ पुत्र था।

(१९) भूतवलि–बाहुवलीका छोटा पुत्र।

(२०) अनंतसेन–सबसे पहिले मोक्ष जानेवाले भगवान् ऋषभके पुत्र अनंतवीर्यका पुत्र था।

(२१) अनंतवीर्य–जयकुमारका ज्येष्ठ पुत्र था। यह सत्यवादीकी बिरदसे प्रसिद्ध है।

(२२) नीचे लिखे भगवान् ऋषभके पुत्र हुए थे जिनका दीक्षा नाम दूसरा ही था।

(१) वृषभसेन–पहिले गणधर (दीक्षा नाम भी यही था)।

(२) अनंतविजय (३) महासेन।

(२३) यशस्वती–भगवान् ऋषभदेवकी महाराणी और भरत चक्रवर्ती आदि सो पुत्रोंकी माता।

(२४) सुनंदा–भगवान् ऋषभदेवकी दूसरी महाराणी बाहुबलीकी माता।

(२५) सुभद्रा–चक्रवर्ती महाराज भरतकी पट्टरानी थी। यह रत्नोंका चूरा चुकुटियोंसे कर देती थी और उसीसे चौक पूरा करती थी। इसे बड़ा अभिमान था।

(२६) अयोध्य–महाराज भरतका सेनापति।

(२७) बुद्धिसागर–चक्रवर्ती भरतका पुरोहित।

(२८) कामवृष्टि–चक्रवर्तीका गृहपति (भंडारी)

(२९) भद्रमुख–चक्रवर्तीका सिलावट।

पाठ ग्यारवाँ।

ऋषभ-युगकी स्फुट बातें।

(१) एक जगह वर्णन करते हुए पूर्व इतिहासकारोंने लिखा है कि उस समयमें भी भील आदि जातियां स्यामवर्ण थीं। छाल आदिसे अपने अंगोंको ढांकती थीं। गोमची आदिके आभूषण पहिनतीं थीं। चमरी गायके बालोंसे इन जातियोंकी स्त्रियां अपने बाल गूंथा करतीं थीं।

(२) भरत चक्रवर्तीकी दिग्विजयके समयमें रास्तेमें पड़नेवाली नदियोंके नामः—

सुमागधी, गंगा, गोमती, कपीवती, खेश्या, गंभीर, कालतोया, कौशिकी, कालमही, ताम्रा, अरुन, निघुग, उदुंबरी, पनसा, तमशा, प्रमृशा, शुक्तिमती, यमुना, वेणुमती, नर्मदा, विशाला, नालिका सिंधु, पारा, निष्कुदरी, बहुवज्रा, रम्या, सिकतनी, कुहा, समतोया, कुंजा, निर्विध्या, जंबूमति, वसुमती, शर्करावती, सिप्रा, कृतमाला, परिंजा, पनसा, अवंतिकामा हस्तिपानी, कागंधुनी, व्याघी चर्मण्वती शतभागा, नदा, करमवेगिनी, चुल्लितापी, रेवा, सप्तपारा, कौशिकी, शोण [नद], तैला, ईक्षुमती, नक्रला, वगा घपना, वैतरणी, मावबती, महेंद्रका, शुष्क, गोदावरी, सुप्रयोगा, कृष्णवर्णा, सन्नीरा, प्रवेणी, कुब्जा, चैर्या, चुर्णी, वेणा, सूकरिका, अंवर्णा, भीमरथी, दारुवेणा, नीरा मूला, वाणा, केतंबा, करीरी, प्रहरा, मुररा, पारा, मदन्य, तापी, लांगलखातिका पर्वतोंके नामः—

हिमवान, वैभार, गोरथ चेदि ऋष्यमूक, नागप्रिय, तैरश्चिक, वैडूर्य कूटाचल, परियात्र, पुष्पगिरि, स्मित, गदा. कामवंत, धुपन, मदेभ, अंगेरियक, महेन्द्र विंध्याचल, नाग. मलयाचल, गोशीर्ष, दर्दुर पांड्य, कवाट, शीतगृह श्री कनन, किष्किंधा, ऋष्य, तुंगवरक, कृष्णगिरि, सुमंदर, मुकुंद।

(३) भरतके समयमें कुलीन घरकी स्त्रियां और लड़कियां खेत रखाने आदि खेती संबधी कार्य करतीं थीं।

पाठ बारहवाँ।

भगवान् अजितनाथ (दूसरे तीर्थंकर)

(१) चौबीस तीर्थंकरोंमें दूसरे तीर्थंकर भगवान अजितनाथ थे। ये ऋषभदेवसे पचास करोड़ सागरके बाद उत्पन्न हुए थे। अजितनाथके जन्मके पहिले तक भगवान् ऋषभदेवके शासनका समय था।

(२) अजितनाथके पिताका नाम जितशत्रु और माताका नाम विजयसेना था। इनका वंश इक्ष्वाकु और गोत्र काश्यप था। जिस दिन भगवान् गर्भमें आये उस दिन माताने ऋषभदेवकी माताके समान सोलह स्वप्न देखे। गर्भमें आनेका दिन ज्येष्ट वदी अमावस था। और समय प्रातःका था। ऋषभदेवके समान इनकी माताकी सेवा व गर्भ शोधनके कार्य देवियोंने किये। इन्द्रादि देवोंने गर्भ कल्याणक उत्सव किया और रत्नोंकी वर्षा पंद्रह मास तक की।

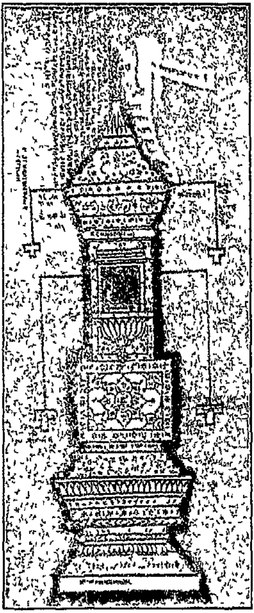

मानस्तंभका चित्र।

"जैनविजय" प्रेस-सूरत

(३) महा शुदी दसमीको रोहिनी नक्षत्रमें भगवान् अजितनाथका जन्म अयोध्यामें हुआ। इनका भी जन्म कल्याणोत्सव इन्द्रों द्वारा ऋषभदेवके समान मनाया गया। ये भी जन्म समय तीन ज्ञान–मति, श्रुत, अवधिज्ञानके धारी थे। और स्वयं विना किसीके द्वारा पढ़े–ज्ञानवान् थे।

(४) इनकी आयु बहत्तर लाख पूर्वकी थी और शरीर साढ़े चारसो धनुष[१] ऊँचा था।

(५) अठारह लाख पूर्वतक ये कुमार अवस्थामें रहे और त्रेपन लाख पूर्वतक पृथ्वीपर राज्य किया।

(६) भगवान् अजितनाथका विवाह हुआ था।

(७) जब आयुमें एक लाख पूर्वका काल बाकी रह गया तब आप महलोंपर बैठे हुए आकाश देख रहे थे। इतनेहीमें आकाशमें उल्कापात हुआ उसे देखकर बिजलीके समान जगतको अनित्य समझ भगवान् अजितदेवने दीक्षा ली। और अपने पुत्रको राज्य दिया।

(८) वैराग्यके चिंतवन करते ही लौकांतिक देवोंने आकर भगवान्की स्तुति की। इन्द्रोंने तपकल्याणक उत्सव किया। जिस दिन भगवान् अजितने तप ग्रहण किया उस दिन माघ सुदी ९ थी। तप धारण करते समय भगवान्को चोथा मन पर्ययज्ञान उत्पन्न हुआ।

(९) भगवान् अजितनाथने सहेतुक नामक वनमें सप्तपर्णके वृक्षके नीचे तप धारण किया था। इनके साथ एक हजार राजा-

---

१ एक धनुष चार हाथका होता है।

ओंने भी दीक्षा ली थी। पहिले ही इन्होंने छह उपवास किये थे।

(१०) उपवासके दिन पूर्ण हो जानेपर भगवान्‌ने ब्रह्मभूत राजाके घर आहार लिया। इसके यहाँ देवोंने पंचाश्चर्य किये।

(११) भगवान् अजितनाथने बारह वर्ष तक तप किया और चार घातिया कर्मोंका नाश कर पौष सुदी ११ को केवलज्ञानी (सर्वज्ञ) हुए।

(१२) केवलज्ञान होनेपर इनका भी इन्द्रोंने केवलज्ञान कल्याणक उत्सव किया। समवशरण सभा बनाई जिसमें भगवान्‌की त्रिकाल दिव्यध्वनि होती थी जिसके द्वारा भगवान् प्राणियोंको हितकर उपदेश देते और सिद्धांत बतलाते थे।

(१३) भगवान्‌की सभामें इस भाँति चतुर्विध संघ था।

९० सिंहसेनादि गणधर
३७५० पूर्वज्ञानके धारी मुनि
२१६०० शिक्षक मुनि
७४२० तीन ज्ञानके धारी
२०००० केवलज्ञानी
२०४०० विक्रियाऋद्धिके धारक साधु
१२४५० मनःपर्ययज्ञानके धारी
२२४०० वादी मुनि
१,२०,००० आर्यिका
५,००,००० श्राविका
१,००,००० श्रावक

(१४) सर्वज्ञ अवस्थामें भगवान्‌ने पृथ्वीपर विहार किया और उपदेश दिया । आपका विहारकाल बारह वर्ष एक माह कम एक लाख पूर्व है ।

(१५) जब आयुमें एक माह बाकी रह गया तब आपकी दिव्यध्वनि बंद हुई और उत्कृष्ट ध्यान द्वारा शेष चार कर्मोंका नाश उस एक माहमें कर चैत्र शुदी पंचमीके दिन आप मोक्ष पधारे ।

(१६) मोक्ष जानेपर इन्द्रोंने ऋषभ भगवान्‌के समान ही निर्वाण कल्याणक किया । आपका निर्वाणस्थान सम्मेदशिखर[1] था ।

(नोट) प्रत्येक तीर्थंकरके समान इनके लिये भी स्वर्गसे वस्त्राभूषण आते और बाल्यावस्थामें देव लोग बालरूप धारणकर साथमें खेलते थे । रत्नोंकी वर्षा, पंचाश्चर्य और गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान, निर्वाण ये पंच कल्याणोंके उत्सव भी इनसे पूर्वके तीर्थंकरोंके समान इन्द्रादि देवोंने बिना किसी न्यूनताके किये थे ।

पाठ तेरहवाँ ।

द्वितीय चक्रवर्ती सगर और महाराज भागीरथ ।

(१) भगवान् अजितनाथके समयमें भरत चक्रवर्तीके समान सगर नामक दूसरे चक्रवर्ती हुए थे ।

(२) यह इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हुए । इनके पिताका नाम समुद्र विजय और माताका नाम सुबाला था ।

---

१ सम्मेदशिखर बंगालमें है । वर्तमानमें यह पार्श्वनाथहिल (पारसनाथ हिल) नामसे प्रसिद्ध है ।

(३) इनकी आयु सत्तर लाख पूर्वकी थी और शरीर साढ़े च्चारसो धनुष ऊँचा था।

(४ ये अठारह लाख पूर्व तक कुमार अवस्थामें रहे। इस समय तक ये महा मंडलेश्वर राजा थे।

(५) अठारह लाख पूर्वकी आयु हो जानेपर सगरके यहाँ चक्ररत्नकी उत्पत्ति हुई।

(६) चक्ररत्न उत्पन्न होनेपर इन्होंने दिग्विजय करना प्रारंभ की और भरत चक्रवर्तीके समान दिग्विजय की। जितनी पृथ्वी भरतने विजय की थी और जिस प्रकार की थी उतनी ही उसी प्रकार इन्होंने भी विजय की व वृषभाचल पर्वतपर भरतके समान अपने नामकी प्रशस्ति भी लिखी।

(७) इनके यहाँ भी छनवे हजार रानियाँ व सात सजीव और सात निर्जीव रत्न थे और नव निधिको लेकर जितनी संपत्ति और विभव भरत चक्रवर्तिके वर्णनमें कहाजाचुका है इन चक्रवर्तीको भी प्राप्त था। जितने चक्रवर्ती हुए हैं सबको संपत्ति आदि समान थी।

(८ सगर चक्रवर्तीके पुत्र साठ हजार थे।

(९) एक दिन श्री चतुर्मुख नामक केवलज्ञान धारीके ज्ञान कल्याणकके लिये देव आये और सगर भी गया। उन देवोंमें सगरके पूर्व भवका मित्र एक मणिकेतु नामक देव था। वह सगरसे आकर मिला और कहने लगा कि हमारी और तुम्हारी स्वर्गमें यह प्रतिज्ञा थी कि मनुष्य होनेपर

तप करेंगे। अब तुम मनुष्य हुए हो अतएव तप धारण करो। पर सगरने यह स्वीकार नहीं किया। उसने बहुत प्रयत्न किये वे सब निष्फल हुए। एकवार मणिकेतु (देव) चारण मुनियोंका रूप धारणकर सगरके यहाँ आया और संसारकी अनित्यताका उपदेश दिया पर तिस पर भी सगरने गृहस्थावस्था नहीं छोड़ी।

(१०) सगरके साठ हजार पुत्रोंने एकवार अपने पितासे प्रार्थना की कि अब हम जवान हो गये हैं। क्षत्रिय हैं। अतएव कोई असाध्य कार्य करनेको हमें आज्ञा दीजिये जिसे हम सिद्ध करके लावें। उस समय तो चक्रवर्तीने कह दिया कि पृथ्वी जीत ली गई है कोई भी असाध्य कार्य नहीं है पर कुछ दिनों बाद उन पुत्रोंके दुवारा प्रार्थना करनेपर चक्रवर्तीने आज्ञा दी कि कैलाशपर्वतके चारों ओर गंगा नदीका प्रवाह बहा दो। क्योंकि कैलाश पर्वतपर भरत चक्रवर्तीके बनवाये हुए रत्नमय जिन-मंदिर हैं और अगाड़ीका काल समय अच्छा न होनेके कारण उन मंदिरोंकी हानिकी संभावना है। इस पर पुत्र, दंड रत्न लेकर गये और कैलाशके चारों ओर जलका प्रवाह कर दिया।

(११) इसी समय ऊपर कहे हुए सगरके मित्र मणीकेतु देवने अपने मित्रको संसारसे उदास करनेके लिये सर्पका रूप धारण किया और अपनी विषमय फुंकारसे सगरके सब पुत्रोंको अचेत कर दिया व आप एक मुर्देको कंधे पर लादकर वृद्ध ब्राह्मणका रूप धारणकर चक्रवर्तीके पास गया और कहने लगा कि मेरा पुत्र मर गया है आप सबके रक्षक हैं अतएव मेरे पुत्रकी रक्षा करें

इस पर चक्रवर्तीने कहा कि संसारमें यमकी दाढ़से निकालनेवाला कोई नहीं है इसलिये हे वृद्ध ! तुम तप धारण करो। तब ब्राह्मणने कहा कि आपका कहना उचित है पर सुना जाता है कि आपके सब पुत्र कैलाशकी खाई खोदते हुए मरण प्राप्त हो गये हैं सो आप क्यों नहीं तप धारण करते। इसपर चक्रवर्तीको बहुत खेद हुआ और वे अचेत हो गये। फिर सुध आनेपर जब एक दूसरे मनुष्यने आकर पुत्रोंके मरणके समाचारकी पुष्टि की तब फिर खेद कर विदर्भा रानीके पुत्र भागीरथको राज्य दे आपने तप धारण किया।

(१२) इधर देवने उन साठ हजार पुत्रोंको सचेतकर कहा कि तुम्हारे पिताने तुम्हारे मरणके समाचार सुनकर तप धारन किया है और भागीरथको राज्य दिया है। इसपर उन पुत्रोंने भी तप धारण किया। ये सब पुत्र चरम-शरीरी—उसी भवसे मोक्ष जानेवाले थे। भागीरथने श्रावकके व्रत लिये।

(१३) सगर चक्रवर्ती और उनके पुत्रोंको केवलज्ञान हुआ और वे सब मोक्ष गये।

(१४) जब भागीरथने चक्रवर्ती सगरके मोक्ष जानेके समाचार सुने तब उसने भी अपने पुत्र वरदत्तको राज्य दिया और तप धारण किया।

(१५) भागीरथके दीक्षागुरु शिवगुप्त थे। भागीरथने कैलाश पर्वतपर गंगाके किनारे तप धारण किया था। देवोंने आकर उसी गंगाके जलसे भागीरथका अभिषेक किया। भागीरथके चरणोंसे गंगाके जलका संयोग हो जानेके कारण गंगा नदी भागीरथीके

नामसे प्रसिद्ध हुई और तभीसे लोग इसे (गंगाको) तीर्थ मानने लगे।

(१६) भागीरथको केवलज्ञान हुआ और कैलाश पर्वतसे वह मोक्ष गया।

पाठ चौदहवाँ।

तृतीय तीर्थंकर श्री संभवनाथ।

(१) भगवान् अजितनाथके मोक्ष जानेके तीस कोटि लाख सागर बाद तीसरे तीर्थंकर संभवनाथ उत्पन्न हुए थे।

(२) फागुण सुदी ८के दिन भगवान् गर्भमें आये। और इन्द्रोंने गर्भ कल्याणक उत्सव मनाया।

(३) भगवान् संभवनाथके पिताका नाम दृढ़रथराय और माताका नाम सुषेणा था। इनका वंश इक्ष्वाकु और गोत्र काश्यप था। ये अयोध्याके राजा थे।

(४) भगवान्का जन्म कार्तिक शुदी पूर्णिमाके दिन अयोध्यामें हुआ था। भगवान् संभवनाथ जन्मसे ही तीनज्ञानके धारी स्वयंभू थे। आपका भी जन्म कल्याणक उत्सव इन्द्रोंने किया।

(५) इनकी आयु साठ लाख पूर्व और शरीर चारसौ धनुषका था।

(६) ये पंद्रह लाख पूर्व तक कुमार अवस्थामें रहे और चुमालीस लाख पूर्व तक राज्य किया। भगवान् संभवनाथका भी विवाह हुआ था।

(७) आयुमें जब एक लाख पूर्व बाकी रह गया तब एक दिन आपने बादलोंको तितर बितर होते देख संसारको भी इसी मुताबिक क्षणभंगुर समझा और वैराग्य रूप भाव कर तप धारण करनेको विचार किया। इन विचारोंके होते ही लौकांतिक देवोंने आकर स्तुति की।

(८) अपने ज्येष्ट पुत्रको राज्य देकर भगवान् संभवनाथने सहेतुक वनमें तप धारण किया। इस समय इन्द्रोंने तप कल्याणकका उत्सव किया था। भगवान्को मन-पर्ययज्ञान उत्पन्न हुआ।

(९) पहिले ही भगवानने दो दिनका उपवास धारण किया। उपवास पूर्ण होने पर **श्रावस्ती** नगरीके राजा **सुरेन्द्रदत्त**के यहाँ आहार किया। भगवान्के आहार लेनेके कारण देवोंने रत्न वर्षा आदि पंचाश्चर्य किये।

(१०) चौदह वर्ष तक तपकर एक दिन भगवान् संभवनाथने शालि वृक्षके नीचे दो दिनका उपवास धारण किया। यहीं पर भगवान्को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। यह कार्तिक मासकी कृष्ण चतुर्थीका दिन था। केवलज्ञान होनेपर इन्द्रादि देवोंने पूजा और समवशरणकी रचना कर केवलज्ञान कल्याणकका उत्सव मनाया।

(११) भगवान्की सभामें इस भांति चतुर्विध संघ था।

१९० चारुषेणादिक गणधर
२,१५० साधु (शिक्षक)
१,२९,३०० पूर्वज्ञानके धारी
९,६०० अवधिज्ञानके धारी

१६००० केवल ज्ञानी
१९८०० विक्रिया ऋद्धि धारी साधु
१२१५० मनःपर्यय ज्ञान धारी
१२००० वादी मुनि
३३०००० धर्मादि आर्यिकाऐं
३००००० श्रावक
५००००० श्राविकायें

(१२) भगवान् संभवनाथने चौदह वर्ष एकमास कम एक लाख पूर्व समय तक विहारकर प्राणीमात्रको उपदेश दिया।

(१३) जब भगवान्‌की आयुका एक माह शेष रह गया तब भगवान्‌की दिव्यध्वनि बंद हुई। इस एक माहमें भगवान्‌ने बाँकीके चार कर्मोंका नाश किया। और मिती चैत्र शुदी छठको एक हजार मुनियों सहित सम्मेदशिखर पर्वतसे मोक्ष पधारे। भगवान्‌के मोक्ष जानेपर इन्द्रादिकोंने भगवान्‌की दाहक्रिया की और निर्वाण कल्याणक उत्सव मनाया।

---

१ प्रत्येक तीर्थंकरके समान इनके लिये भी वस्त्राभूषण स्वर्गसे आते थे व देवगण बालक रूप धारणकर बाल्यावस्थामें इनके साथ खेलते थे व रत्नोंकी वर्षा, पंचाश्चर्य, गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान, निर्वाण इन पंचोंकल्याणोंके उत्सव इनमें पूर्वके तीर्थंकरोंके ही समान विना किसी न्यूनताके इन्द्रादि देवोंने किये थे।

पाठ पंद्रहवाँ।

अभिनंदन स्वामी-(चौथे तीर्थंकर)

(१) भगवान् संभवनाथके मोक्ष जानेके दश लाख करोड़ सागरके बाद चौथे तीर्थंकर भगवान् अभिनंदनका जन्म हुआ।

(२) भगवान् अभिनंदन वैशाख शुदी छठको माता सिद्धार्थाके गर्भमें आये। आपके पिताका नाम संवर था जो कि अयोध्याके महाराज थे। वंश आपका इक्ष्वाकु और गोत्र काश्यप था। गर्भमें आनेके पहिले पूर्वके तीर्थंकरोंकी माताके समान आपकी माताने स्वप्न देखे। गर्भमें आनेपर इन्द्रादि देवोंने गर्भ कल्याणक उत्सव किया। और पंद्रह माह तक रत्नोंकी वर्षा की।

(३) माघ सुदी बारसके दिन भगवान् अभिनंदनका जन्म हुआ। इन्द्रोंने देवों सहित मेरु पर्वतपर लेजाकर अभिषेक करना आदि जन्म कल्याणोत्सव उसी भांति किया जिस प्रकार इनसे पूर्वके तीर्थंकरोंका किया था। आप भी जन्ममें तीन ज्ञान धारी थे।

(४) इनका शरीर साड़ेतीनसो धनुष ऊँचा था। इनकी आयु पचास लाख पूर्वकी थी और वर्ण सुवर्णके समान था।

(५) साड़े बारह लाख पूर्व तक आप कुमार अवस्थामें रहे। इसके बाद अपने पितासे राज्य पाकर करीब साड़े बत्तीस लाख पूर्वसे कुछ अधिक समय तक नीति सहित राज्य किया।

(६) एक दिन आप अपने महलों परसे दिशाओंको देख रहे थे। आपको आकाशमें बादलोंका एक नगरसा बना दिखाई दिया और फिर वह तत्काल तितर बितर हो गया। यही देखकर आपको

वैराग्य उत्पन्न हुआ और आपने अपने पुत्रको राज्य देकर मिती माह शुदी बारसके दिन वनमें जाकर तप धारण किया। वैराग्य होनेपर लोकांतिक देवोंका आना व इन्द्रादि देवोंका पालिकीमें बिठलाकर वनमें लेजाना आदि तप कल्याणक उत्सव देवों द्वारा मनाया।

(७) पहिले आपने दो दिनका उपवास धारण किया और उसके पूरे होजाने पर अयोध्यामें इन्द्रदत्त राजाके यहां आहार लिया इस पर देवोंने इन्द्रदत्तके यहां पंचाश्चर्य किये।

(८) अठारह वर्ष तक तप करने पर भगवान्को पौष शुदी चौदसके दिन दुपहरमें शालि वृक्षके नीचे केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ। केवल ज्ञान होनेपर इन्द्रादि देवोंने समवशरण सभा बनाई और केवलज्ञान कल्याणक उत्सव किया।

(९) भगवान् अभिनंदनकी सभामें इस भांति चतुर्विध संघ था।

१०३ वज्रनाभि आदि गणधर
२५०० पूर्वज्ञान धारी
२३२०५० शिक्षक साधु
९८०० तीन ज्ञानके धारी
१६००० केवलज्ञानी
१९००० विक्रिया ऋद्धिके धारक
११६५० मनःपर्ययज्ञानके धारी
११००० वादी मुनि
३३०६०० मेरुषेणा आदि आर्यिकाएं

१००००० श्रावक

५००००० श्राविकाएँ

(१०) आर्यदेशके समस्त देशोंमें विहारकर जब आपकी आयु एक माहकी शेष रही तब आप सम्मेदशिखर पर्वतपर आये। उस समय दिव्यध्वनि होना बंद होगया था।

(११) एक माहमें बाकीके चार कर्मोका नाशकर मिती वैशाख सुदी छठको बहुत मुनियों सहित सम्मेदशिखर पर्वतसे मोक्ष बधारे। मोक्ष होजानेके बाद इंद्रादि देवोंने पूर्वके तीर्थंकरोंके समान अग्नि-दाह आदि द्वारा निर्वाण कल्याणक उत्सव मनाया।

पाठ सोलहवाँ।

पाँचवे तीर्थंकर सुमतिनाथ।

(१) भगवान् अभिनंदनके मोक्ष जानेके नौ करोड़ लाख सागर बाद सुमतिनाथ पाँचवे तीर्थंकर उत्पन्न हुए।

(२) आप श्रावण सुदी दूजके दिन अयोध्याके राजा मेघरथकी स्त्री मंगलादेवीके गर्भमें आये। गर्भमें आनेपर इन्द्रादि देवोंने पूर्वके तीर्थंकरोंके समान गर्भ कल्याणक उत्सव किया। पंद्रह मास तक रत्न वर्षा की। माताको सोलह स्वप्न पूर्वके तीर्थंकरोंकी माताओंके समान आये थे।

(३) भगवान् सुमतिनाथ इक्ष्वाकुवंशी, काश्यप गोत्रके थे।

(४) चैत्र सुदी ग्यारसको भगवान्‌का जन्म हुआ। इन्द्रादिक देवोंने मेरुपर ले जाना, अभिषेक करना आदि पूर्वके तीर्थंकरोंके समान जन्म कल्याणक उत्सव मनाया। बाल्यावस्थामें भगवान्‌के

साथ खेलनेको देवगण बालकका रूप धरकर स्वर्गसे आते थे। और वहींसे वस्त्राभूषण भी भगवान्‌के लिये आया करते थे। भगवान् जन्मसे ही तीन ज्ञानके धारक थे।

(५) आपकी आयु चालीस लाख पूर्वकी थी और शरीर तीनसौ धनुष ऊँचा सुवर्णके समान वर्णका महासुंदर था। शरीरमें १००८ लक्षण थे।

(६) दश लाख पूर्व तक आप कुमार अवस्थामें रहे। बाद अपने पिताका राज्य पाया। जो कि उनतीस लाख पूर्व बारह पूर्वांग तक किया। आपका विवाह हुआ था।

(७) बाद आपने दीक्षा धारण की। आपकी दीक्षाका दिन वैशाख सुदी नोमी था। लौकांतिक देवादिकोंने भगवान्‌का तप कल्याणक उत्सव पहिले तीर्थंकरोंके समान किया। तपका स्थान सहेतुक वन था। आपके साथ एक हजार राजाओंने तप धारण किया था। इसी समय भगवान्‌को चोथे ज्ञानकी उत्पत्ति हुई।

(८) पहिले पहिल आपने दो दिनका उपवास धारण किया। जिसके पूरे होनेपर सौमनसपुरमें पद्मभूपके यहां आहार लिया। आहार लेनेपर इन्द्रादिकोंने पंचाश्चर्य किये।

(९) बीस वर्ष तक तप करनेपर एक दिन आप छह दिनका उपवास धारण करके प्रियंगु वृक्षके नीचे बैठे और चार घातिया कर्मोंका नाशकर मिती चैत्र सुदी ग्यारसके दिन केवलज्ञान प्राप्त किया। केवलज्ञान हो जानेपर इन्द्रादिकोंने ज्ञान कल्याणक उत्सव मनाया। समवशरण सभाकी रचना की।

(१०) भगवानकी सभामें इस प्रकार चतुर्विध संघके मनुष्य थे।

११६ चामर आदि गणधर.
२४०० पूर्वज्ञानके धारी.
३२४२९० साधु
११००० अवधि ज्ञानके धारी.
१२००० केवलज्ञानी.
१८९०० विक्रिया ऋद्धिधारी मुनि.
१०४०० वादी मुनि.
१०४०० मन पर्यय ज्ञानी.
३३०००० अनतमती आदि आर्यिकाएँ.
३००००० श्रावक.
५००००० श्राविकाएँ.

(११) भगवान् सुमतिनाथकी आयुमें जब एक मास बाकी रह गया तब आप समस्त पृथ्वीपर विहारकर सम्मेदशिखर पर पधारे। यहाँपर दिव्यध्वनिका होना बंद हुआ। इस एक माहमें शेष कर्मोंका नाशकर चैत्र सुदी ग्यारसको एक हजार मुनि सहित सम्मेदशिखरसे मोक्ष पधारे।

(१२) मोक्ष जानेके बाद इन्द्रादि देवोंने पूर्वके तीर्थंकरोंके समान निर्वाण कल्याणक उत्सव मनाया। अग्निकुमार जातिके देवोंने अपने मुकुटकी अग्निसे भगवानके शरीरका दाह किया।

पाठ सत्रहवाँ।

पद्मप्रभु (छटवें तीर्थंकर)

(१) सुमतिनाथ भगवानके नव्वे हजार कोटि सागर बाद पद्मप्रभु उत्पन्न हुए।

(२) आप माघ वदी छठको कोशांबी नगरीके राजा मुकुटवरकी रानी सुसीमाके गर्भमें आये। गर्भमें आनेके छह मास पूर्वसे और गर्भके नौ मास तक देवोंने रत्न वर्षा की और गर्भमें आनेपर पूर्वके तीर्थंकरोंके समान गर्भ कल्याणक उत्सव किया। माताको सोलह स्वप्न पूर्वके तीर्थंकरोंकी माताओंके समान आये।

(३) आपका वंश इक्ष्वाकु और गोत्र काश्यप था।

(४) आपका जन्म कार्तिक कृष्णा त्रयोदशीको तीनों ज्ञान सहित हुआ, जन्म होनेपर पूर्वके तीर्थंकरोंके समान इन्द्रादि देवोंने जन्म कल्याणक उत्सव मनाया।

(५) भगवानके साथ खेलनेको बालक रूप धारणकर स्वर्गसे देव आया करते थे। वस्त्राभूषण भी स्वर्गसे ही आते थे।

(६) आपकी आयु तीस लाख पूर्वकी थी। शरीर अढ़ाईसौ धनुष्य ऊँचा था।

(७) साढ़े सात लाख पूर्वतक आप कुमार अवस्थामें रहे बाद आप अपने पिताके राज्य सिंहासनपर बैठे। आप पट्टबंध राजा थे।

(८) साढ़े इक्कीस लाख पूर्व सोलह पूर्वांग समय तक आपने राज्य किया। आप विवाहित थे।

(९) एक दिन राजसभामें आपने सुना कि सेनाके मुख्य हस्तीने खाना पीना छोड़ दिया है तब अवधिज्ञानसे अपने पूर्वभवोंको जानकर संसारको अनित्य समझ कार्तिक वदी तेरसको एक हजार राजाओं सहित मनोहर नामक वनमें आपने दीक्षा धारण

की। इन्द्रोंने तप कल्याणक उत्सव मनाया। इस समय आपको मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न हुआ।

(१०) दो दिन उपवासकर आपने **वर्द्धमान नगरके** राजा **सोमदत्तके** यहां आहार लिया। तब इन्द्रादि देवोंने सोमदत्तके यहाँ पंचाश्चर्य किये।

(११) छह माह तक घोर तपकर चैत्र सुदी तेरसको आप केवलज्ञानी हुए। चार घातिया कर्मोंका नाश किया। देवोंने समवशरणकी रचना की और केवलज्ञान कल्याणकका उत्सव किया।

(१२) भगवान्‌की समवशरण सभामें इस भांति चतुर्विध-संघके मनुष्य थे।

१००	वज्रचामर आदि गणधर
२३००	पूर्वज्ञानके धारक
२,६९,०००	शिक्षक साधु
१०,०००	अवधि-ज्ञानके धारक
१२,०००	केवलज्ञानी
१६,८००	विक्रिया ऋद्धिके धारक
१०३,००	मन पर्यय ज्ञानके धारक
९,६००	वादी मुनि
३,२०,०००	आर्यिका
३००,०००	श्रावक
५००,०००	श्राविकाएं

(१३) समस्त आर्यखंडमें विहारकर जब आयुमें एक माह

बांकी रहा तब आप सम्मेदशिखरपर आये। इस समय दिव्यध्व-निका होना बंद होगया था। इस एक माहके समयमें शेष कर्मोंका नाशकर भगवान् फागुण वदी चतुर्थीके दिन एक हजार राजाओं सहित मोक्ष पधारे। इन्द्रादि देवोंने आकर शव-दाहकी क्रिया की और निर्वाण कल्याणक किया।

पाठ अठारहवाँ।

सुपार्श्वनाथ (सातवें तीर्थंकर)

(१) पद्मप्रभुके हजार क्रोड़ सागर बाद भगवान् सुपार्श्वनाथका जन्म हुआ।

(२) आप भादों वदी छठको माताके गर्भमें आये। गर्भमें आनेपर माताने पूर्वके तीर्थंकरोंकी माताओंके समान सोलह स्वप्न देखे। गर्भमें आनेके छह माह पूर्वसे और गर्भमें रहनेके समय तक देवोंने रत्नवर्षा की, माताकी सेवाके लिये देवियाँ रखीं, आदि गर्भ कल्याणक उत्सवके कार्य इन्द्रादि देवोंने किये।

(३) आपकी माताका नाम पृथ्वीषेणा और पिताका नाम सुप्रतिष्ठ था।

(४) आपका वंश इक्ष्वाकु और गोत्र काश्यप था।

(५) आपके पिता वाराणसी-काशीके राजा थे।

(६) आपका जन्म ज्येष्ठ सुदी बारसको हुआ। आप जन्म समयसे तीन ज्ञानके धारक थे। इन्द्रादि देवोंने मेरुपर ले जाना, अभिषेक, नृत्य व स्तुति आदि जन्माभिषेक कार्य जैसे कि पूर्व तीर्थंकरोंके किये थे, किये।

(७) आपकी आयु बीस लाख पूर्वकी थी और शरीर दोसो धनुष्य ऊंचा था ।

(८) आपके साथ खेलनेको स्वर्गसे देव आते थे, और वस्त्राभूषण भी स्वर्गसे आया करते थे।

(९) आप पांच लाख पूर्व तक कुमारावस्थामें रहे ।

(१०) आपका वर्ण प्रियगुके समान था।

(११) आपने चौदह लाख पूर्व बीस पूर्वांग समय तक राज्य किया।

(१२) एक दिन बादलोंको छिन्नभिन्न होते देख आपको वैराग्य हुआ। लौकांतिक देवोंने आकर आपकी स्तुति की। वैराग्य होते ही पुत्रको राज्य देकर आपने दीक्षा धारण की। और इन्द्रादि देवोंने तप कल्याणक उत्सव पहिलेके तीर्थंकरोंके समान मनाया।

(१३) आपने ज्येष्ठ सुदी बारसको तप धारण किया था। तप धारण करते ही आपको मन पर्ययज्ञान उत्पन्न हुआ।

(१४) आपके साथ एक हजार राजाओंने तप धारण किया था। पहिले ही आपने दो दिनका उपवास धारण किया। उसके पूर्ण होने ही आपने सोमखेट नगरके राजा महेन्द्रदत्तके यहां आहार लिया। आपके आहारके लेनेसे देवोंने रत्नवर्षा आदि पंचाश्चर्य किये।

(१५) नौ वर्ष तक तप करनेके पश्चात् फाल्गुन वदी छठके दिन सिरीषके वृक्षके नीचे चार घातिया कर्मोंको नाशकर केवलज्ञान प्राप्त किया।

(१६) भगवान्‌को केवल ज्ञान होने ही इन्द्रादि देवोंने समवशरण सभा रची और ज्ञान कल्याणकका उत्सव किया।

(१७) भगवान्‌की सभामें इसभांति चारों संघके मनुष्य थे।

७९ बल आदि गणधर

२०३० पूर्वज्ञानधारी

२४४९२० शिक्षक मुनि

९००० अवधिज्ञान धारी

११००० केवल ज्ञानी

१५३०० वैक्रियिक ऋद्धि धारी।

९१५० मन:पर्यय ज्ञानी

८६०० वादी मुनि

३६०००० मीनाआर्या आदि आर्यिकाएं

३००००० श्रावक

५००००० श्राविकाएं

(१८) आयुके एक मास शेष रहनेके पूर्व तक आपने पृथ्वी पर विहार किया, जगह जगह धर्मोपदेश देकर सम्पादित किया।

(१९) आयुके एक मास शेष रह जाने पर आपकी दिव्य ध्वनि बंद हुई तब आपने तप द्वारा शेष चार अघातिया कर्मोंको नाशकर तिथी फाल्गुण वदी चतुर्दशीको निर्वाणपद प्राप्त किया। निर्वाण हो जानेपर इन्द्रादिकोंने निर्वाणकल्याणक उत्सव मनाया। आपका निर्वाणस्थान सम्मेद शिखर पर्वत है।

पाठ उगनीसवाँ।

चंद्रप्रभु (आठवें तीर्थंकर)

(१) **सुपार्श्वनाथ**-स्वामीके मोक्ष जानेके नौसो करोड सागर बाद भगवान् **चंद्रप्रभुका** जन्म हुआ।

(२) चैत्र वदी पंचमीकी रात्रिको आप माताके गर्भमें आये। गर्भमें आनेपर पूर्वके तीर्थकरोंके समान इनकी माताने भी सोलह स्वप्न देखे। गर्भमें आनेके छह माह पूर्वसे और गर्भमें रहने तक इन्द्रादि देवोंने रत्नोंकी वर्षा की और गर्भकल्याणकका उत्सव मनाया। माताकी सेवा देवियोंने की।

(३) आपकी माताका नाम **लक्ष्मणा** और पिताका नाम **महासेन** था। महाराज महासेन **चन्द्रपुरीके**[1] राजा थे। आपका वंश इक्ष्वाकु और गोत्र काश्यप था।

(४) पौष शुदी ग्यारसको आपका जन्म हुआ। जन्मसे ही आप तीन ज्ञान धारी थे। जन्म होते ही इन्द्रादि देवोंने मेरु पर्वत पर ले जाना, अभिषेक करना, स्तुति करना आदि जन्म कल्याणकके उत्सव सम्बंधी कार्य किये।

(५) आपके साथ खेलनेको स्वर्गसे देव आया करते थे और स्वर्गसे ही वस्त्राभूषण आते थे।

(६) आपका शरीर डेढ़सो धनुष ऊँचा था। आयु दशलाख पूर्वकी थी।

(७) अढाई लाख पूर्व तक आप कुमार अवस्थामें रहे फिर

---

१ बनारसके समीप चन्द्रपुरी नामक छोटीसी बस्ती है।

राज्य प्राप्तकर छह लाख पचास हजार पूर्व और चौवीस पूर्वांग तक राज्य किया।

(८) आपका विवाह हुआ था।

(९) एक दिन दर्पणमें मुँह देखते देखते आपको वैराग्य उत्पन्न हुआ। तब अपने पुत्र श्रीमान् वरचंद्रको बुलाकर राज्याभिषेक पूर्वक राज्य दिया और आपने पौष वदी एकादशीके दिन एक हजार राजाओं सहित सवरितु नामक वनमें तप धारण किया। वैराग्य होते ही लौकांतिक देवोंने आकर स्तुति की थी। और इन्द्रादि देवोंने अभिषेकपूर्वक तप कल्याणक उत्सव पूर्वके तीर्थंकरोंके समान मनाया था। जिस पालकीपर चढ़कर भगवान् वनको पधारे थे उसका नाम **विमला** था। और वह स्वर्गसे देवोंद्वारा लाई गई थी। तप धारण करते ही आपको चौथा मन पर्यय ज्ञान उत्पन्न हुआ।

(१०) पहिले ही आपने दो दिनका उपवास धारण किया और उसके पूर्ण हो जानेपर **नलिन** नामक नगरमें **सोमदत्त** राजाके यहां आहार किया। इसपर देवोंने रत्न वर्षा आदि पंचाश्चर्य किये।

(११) तीन मास तक आपने तप किया जिसके कारण मिती फागुण वदी सप्तमीको चार कर्मोंका नाश हुआ और भगवान् चंद्रप्रभु केवलज्ञानी बने। केवलज्ञान होनेपर इन्द्रादि देवों द्वारा समवशरणकी रचना की गई व स्तुति पूजादिसे पूर्वके तीर्थंकरोंके समान ज्ञान कल्याणक उत्सव मनाया गया। केवलज्ञान

होते ही केवलज्ञानके दश अतिशय प्रगट हुए और आप अनंत चतुष्टय युक्त हुए।

(१२) आपने आर्य खंडमें विहार किया और प्राणियोंको दिव्यध्वनि द्वारा हितका मार्ग बताया।

(१३) भगवान् चंद्रप्रभुके समवशरणमें चतुर्विध संघके मनुष्य इस भाँति थे।

९३ दत्तमुनि आदि गणधर
२००० पूर्व ज्ञानके धारी
८००० अवधि ज्ञानी
२००४०० शिक्षक साधु
१०००० केवलज्ञानी
१४००० विक्रिया ऋद्धिके धारक.
८००० मन.पर्यय ज्ञानी.
७६०० वादी मुनि.
१८०००० वरुणा आदि आर्यिकाएं.
३००००० श्रावक
५००००० श्राविकाएं.

(१४) आपकी आयुमें जब एक माह शेष रहा तब आपका विहार बंद हुआ और आप सम्मेदशिखर पर पधारे। इसी समयसे आपकी दिव्यध्वनिका होना बंद हुआ। अंतमें फागुन सुदी सप्तमीको सब कर्मोंका नाशकर एक हजार राजाओं सहित सम्मेदशिखरसे मोक्ष पधारे। मोक्ष जानेपर इन्द्रादि देवोंने निर्वाण कल्याणक उत्सव मनाया।

पाठ बीसवाँ।

भगवान् पुष्पदंत (नौवें तीर्थंकर।)

(१) भगवान् चंद्रप्रभके मोक्ष जानेके नव्वे करोड़ सागर बाद भगवान् पुष्पदंतका जन्म हुआ।

(२) फागुन वदी नौमीके दिन आप गर्भमें आनेपर पूर्वकी तीर्थंकरोंकी माताओंके समान आपकी माताने भी सोलह स्वप्न देखे जिनका कि फल तीर्थंकरका उत्पन्न होना है।

(३) आपके पिताका नाम **सुग्रीव** और माताका नाम **जयरामा** था। आप काकंदीपुरीके राजा थे। आपका वंश इक्ष्वाकु और गोत्र काश्यप था।

(४) आपका जन्म मार्गशीर्ष सुदी प्रतिपदाके दिन **काकंदीपुरी**में हुआ। जन्मसे ही आप तीन ज्ञानके धारी थे। इन्द्रादि देवोंने मेरु पर ले जाना, स्तुति करना आदि पूर्वके तीर्थंकरोंके समान जन्म कल्याणक उत्सव किया।

(५) आपके साथ खेलनेको स्वर्गसे देव आते थे। और वस्त्राभूषण भी स्वर्गसे आया करते थे।

(६) आपकी आयु दो लाख पूर्वकी थी और शरीर एकसो धनुष ऊंचा था।

(७) पचास हजार पूर्व तक आप कुमार अवस्थामें रहे।

(८) आपका भी विवाह हुआ था।

(९) कुमारावस्थाके बाद आपने राज्य सिंहासनको सुशोभित किया और पचास हजार पूर्व अट्ठावीस पूर्वांग तक राज्य किया।

(१०) एक दिन आकाशमें उल्कापात देखकर वैराग्य उत्पन्न हुआ और अपने पुत्र **सुमति**को राज्य देकर मिती मार्गशीर्ष सुदी पड़िवाके दिन दीक्षा धारण की। वैराग्य होते ही लौकांतिक देवोंने आकर स्तुति की और फिर इन्द्रादि देवोंने अभिषेक पूर्वक तप कल्याणक उत्सव मनाया। तप धारण करते ही आपको मन.पर्यय ज्ञान उत्पन्न हुआ। आपने पुष्पक वनमें तप धारण किया था। वनमें आप सूर्यप्रभा नामक पालकीपर चढ़कर गये थे।

(११) पहिले ही आपने दो दिनका उपवास धारण किया। उपवास पूर्ण होने ही **सफलपुरमें पुष्पमित्र** नामक राजाके यहाँ आपका आहार हुआ तव देवोंने रत्न वर्षा आदि पांच आश्चर्य किये।

(१२) **चार वर्ष** तप करनेपर मिती कार्तिक सुदी दूजके दिन भगवान्को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। समवसरण सभा बनाई गई और इन्द्रादि देवोंने ज्ञान कल्याणक उत्सव मनाया।

(१३) आपकी समवशरण सभामें इसप्रकार शिष्य थे।

८८ विदर्भ आदि गणधर
१५०० श्रुत केवलि.
१५५५०० शिक्षक मुनि.
८४०० अवधिज्ञानी.
७००० केवलज्ञानी.
१३००० विक्रिया रिद्धिके धारक.
७५०० मन पर्यय ज्ञानी.

६६०० वादी मुनि.

३८०००० घोषा आदि आर्यिकाएँ

२००००० श्रावक

९००००० श्राविकाएँ

(१४) सब दूर विहारकर अंतमें जब कुछ ही दिन आयुके बाँकी रह गये तब दिव्य ध्वनि बंद हुई और सम्मेदशिखर पर्वत पर आप रहे। और वहाँसे शेष कर्मोंका नाशकर भादों सुदी अष्टमीको मोक्ष पधारे। आपके मोक्ष जानेपर इन्द्रादि देवोंने निर्वाण कल्याणकका उत्सव, पूर्वके तीर्थंकरोंके समान मनाया।

पाठ इकवीसवाँ।

भगवान् शीतलनाथ (दशवें तीर्थंकर)

(१) भगवान् पुष्पदंतके मोक्ष जानेके नोकरोड सागर बाद दशवें तीर्थंकर भगवान् **शीतलनाथ**का जन्म हुआ। इनके जन्म होनेके एक पूर्वकम पाव (एक चतुर्थांश) पल्य पहिले धर्म-मार्ग बंध हो गया था।

(२) आप चैत्र कृष्ण अष्टमीके दिन माताके गर्भमें आये। माताने सोलह स्वप्न देखे। इन्द्रादि देवोंने गर्भ कल्याणक उत्सव किया। गर्भमें आनेके छहमास पूर्वसे जन्म होने तक पंद्रह माह देवोंने रत्न वर्षा की।

(३) आपके पिताका नाम **दृढ़रथ** और माताका नाम **सुनंदा** था। पिता दृढरथ मालव देशके **भद्दलपुर**के राजा थे।

१ वर्तमानमे यह नगर भेलसा नामसे ग्वालियर रियासतमें है।

(४) माघवदी बारसको आपका जन्म हुआ। इन्द्रादि देवोंने मेरूपर ले जाना, अभिषेक करना आदि जन्म कल्याणकका उत्सव किया।

(५) आपके साथ खेलनेको स्वर्गसे देव आते थे। और वस्त्राभूषण भी स्वर्गसे ही आया करते थे।

(६) आपकी आयु एक लाख पूर्वकी थी और नव्वे धनुष ऊँचा सुवर्णके समान शरीर था।

(७) आप पच्चीस हजार पूर्व तक कुमार अवस्थामें रहे। आपका विवाह हुआ था।

(८) पचास हजार पूर्व तक आपने राज्य किया।

(९) एक दिन आप क्रीड़ाके लिये जब वनमें गये तब पानीसे लदे हुए बादलोंको देखा पर तत्काल ही उन बादलोंके विखर जानेसे आपको जगत्‌की अनित्यताका ध्यान हुआ और वैराग्य चितवन किया। तब लौकांतिक देवोंने आकर स्तुति की।

(१०) माघ वदी द्वादशीको आपने तप धारण किया। इन्द्रदि देवोंने तप कल्याणक उत्सव मनाया।

(११) पहिले दो दिनका उपवास धारण किया जिसके पूर्ण होनेपर **अरिष्ट नगरके** राजा **पुनर्वसुके** यहाँ आहार लिया। राजा पुनर्वसुके यहा इन्द्रादि देवोंने पंचाश्चर्य किये।

(१२) तीन वर्षतक तपकर मिती पौष वदी चतुर्दशीके दिन बीलके वृक्षके नीचे आपको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। इंद्रादि देवोंने केवलज्ञानका उत्सव किया। समवशरणकी रचना की।

(१३) समवशरण सभामें इस प्रकार चतुर्विध संघके मनुष्य थे।

८१ गणधर पूर्वज्ञान धारी
१४०० " " "
५९२०० शिक्षक मुनि
७२०० अवधि ज्ञानी
७००० केवलज्ञानी
१२००० विक्रिया ऋद्धिके धारक
७५०० मनःपर्यय ज्ञानी
५७०० वादी मुनि
३८०००० धरणा आदि आर्यिकाएँ
२००००० श्रावक
४००००० श्राविकाएँ

(१४) समस्त आर्यखंडमें विहारकर जब आयुमें एक मास शेष रहा तब आप सम्मेदशिखर पधारे और शेष कर्मोंका नाश कर आसोज सुदी अष्टमीको एक हजार साधुओं सहित सम्मेदशिखरसे मोक्ष गये। आपके मोक्ष जानेपर इन्द्रादि देवोंने निर्वाण कल्याणक उत्सव मनाया।

(१५) भगवान् शीतलनाथके ती.र्थके[1] अंतिम समयमें **भद्दलपुर** नामक ग्रामके **मेघरथ** राजाने दान करनेका विचार मंत्रीसे प्रगट किया। मंत्रीने शास्त्र, अभय, आहार, औषधि इन चार दानोंके करनेकी सम्मति दी परंतु राजाने नहीं मानी और अपने पुरोहित **भूतिशर्मा** ब्राह्मणके पुत्र **मुंडशालायन**ने हाथी,

१ एक तीर्थंकरके मोक्ष जानेके बाद दूसरे तीर्थंकरके मोक्ष जानेतकका बीचका समय पहिले तीर्थंकरका तीर्थसमय कहलाता है।

घोडा, कन्या, सुवर्ण आदि दश प्रकारका दान ब्राह्मणादिको देनेकी सम्मति दी और यश व पुण्य, आदिका लोभ बताया। गृहस्थों रचित ग्रंथोंमें इन दानोंकी विधि बतलाई। तब राजाने दश प्रकारके दान दिये। इसी समयसे ब्राह्मवर्ण जैन धर्मका द्रोही होने लगा और इसी समयसे चार दानोंकी बजाय हाथी, घोड़े आदिका दान शुरू हुआ।

पाठ बावीसवाँ।

भगवान् श्रेयाँसनाथ (ग्याहरवें तीर्थंकर)

(१) भगवान् **शीतलनाथ**के मोक्ष जानेके एकसौ सागर और छासठ लाख छव्वीस हजार वर्ष कम एक करोड सागर बाद आपका जन्म हुआ। आपके जन्मसे अस्सी लाख वर्ष कम आधे पल्य पहिलेसे ही धर्म-मार्ग बंद हो गया था।

(२) ज्येष्ठ वदी छठको आप गर्भमें आये। माताने सोलह स्वप्न देखे। इन्द्रोंने आकर गर्भ कल्याणक उत्सव किया। गर्भमें आनेके छह मास पूर्वसे जन्म होने तक पंद्रह माह देवोंने रत्न वर्षा की।

(३) आपके पिताका नाम **विष्णु** और माताका नाम **नंदा देवी** था पिता विष्णु सिंहपुर[१]के राजा थे। वंश इक्ष्वाकु और गोत्र काश्यप था।

(४) फागुन वदी ग्यारसके दिन आपका जन्म हुआ। आप

१ वर्तमान सिंहपुर बनारसके पास है।

प्रथम भाग ।

११०

(२) अश्वग्रीव पहिला प्रतिनारायण था। प्रत्येक प्रतिनारायण तीन खंडोंके (चक्रवर्तीसे आधे) राज्यके स्वामी होते हैं इसी नियमके अनुसार प्रतिनारायण अश्वग्रीव तीन खंडका (दक्षिण भरतक्षेत्रका) स्वामी था। इसके यहाँ चक्ररत्न था।

(३) विजयार्द्ध पर्वतकी दक्षिण बाजूका क्षेत्र दक्षिण भरत-क्षेत्र कहलाता है। इस सब क्षेत्रको अश्वग्रीवने वश किया था और इस क्षेत्रके राजाओंको अपने आधीन कर लिया था।

(४) इसकी आठ हजार रानियाँ थीं।

(५) इसके समयमें त्रिपृष्ठ नामक नारायण उत्पन्न हुआ था। (जिसका वर्णन आगेके पाठमें है।) अश्वग्रीवके लिये किसी राजाके यहाँसे भेट आ रही थी उस भेंटको नारायण तृपृष्ठने छुडा लिया। भेंटके साथ एक सिंह था उसे भी मार डाला। यह हाल सुनकर अश्वग्रीवने चिंतागति, मनोगति, नामक दो दूत भेजकर नारायण तृपृष्ठको आधीन होनेका सदेश भेजा जिसे नारायणने अस्वीकार किया। तब दोनोंका युद्ध होना निश्चय हुआ। पहिले तो सेनाके साथ युद्ध होनेका निश्चय हुआ था, परंतु मत्रियोंके समझाने पर दोनोंका परस्पर युद्ध हुआ। जिसमें अश्वग्रीव हारा और उसका राज्य नारायणके आधीन हुआ। नारायणने अपने श्वसुरको विद्याधर श्रेणीका राजा बनाया। प्रतिनारायणका चक्ररत्न नारायणके यहाँ आया।

पाठ चौबीसवाँ।

नारायण तृपृष्ठ और बलदेव-विजय

(प्रथम नारायण और प्रथम बलदेव)

(१) पोदनपुरके राजा प्रजापति और महारानी भगवतीके पुत्र तृपृष्ठ इस युगके पहिले नारायण थे।

(२) नारायण तृपृष्ठ भगवान् श्रेयाँस नाथके समयमें उत्पन्न हुए थे। इनका ही जीव पूर्व भवमें मारीचकी पर्यायमें था जिसका वर्णन पाठ दशवेंमें आया है।

(३) इनकी द्वितीय माताने उत्पन्न बड़े भाईका नाम विजय था जो कि बलदेव था। प्रथम बलदेव यही हुआ है। विजयकी माताका नाम जयावती था।

(४) नारायण तृपृष्ठकी आयु चोरासी लाख वर्षकी थी।

(५) तृपृष्ठ और विजय इन दोनों भाईयोंमें बड़ा भारी प्रेम था जैसाकि दूसरोंमें नहीं था।

(६) नारायण तृपृष्ठने प्रति नारायण अश्वग्रीव (जिसका वर्णन पाठ २६ में किया गया है) को युद्धमें हराया और तीन खंडके-दक्षिण भरतके स्वामी बने।

(७) नारायणके पास चक्रवर्तीसे आधा राज्य आदि विभूति आधी हुआ करती है इस लिये नारायण अर्द्धचक्री भी कहलाते हैं इस नियमके अनुसार तृपृष्ठ भी अर्द्धचक्री थे।

(८) नारायणके रत्न, सात रत्न थे धनुष १ शंख २ चक्र ३ शक्ति ४ दंड ५ गदा ६ असि ७

(९) बलदेव–विजयके पास चार रत्न थे।

गदा १ माल २ हल ३ मूसल ४

(१०) नारायण तृपृष्ठकी सोलह हजार रानियाँ थीं।

(११) तृपृष्ठकी पट्टरानीका नाम **स्वयंप्रभा था**। और ज्येष्ठ पुत्र **श्री विजय** नामक था। इन्होंने ज्येष्ठ पुत्रका विवाह अपने सालेकी कन्या "तारा" के साथ कियाथा।

(१२) तृपृष्ठके पिता **प्रजापति** ने **पिहिताश्रव** मुनि-के पास दीक्षा ली और कर्मोंका नाशकर मोक्ष गया।

(१३) नारायण तृपृष्ठ मरकर नरक गया। इनके भाई बलभद्रने भ्राताकी मृत्युपर बहुत शोक किया यहाँतकाकि छह माहतक तृपृष्ठके शवको पीठपर रखे फिरते रहे। अंतमें मोह छूटनेपर जब आपको भान हुआ तब शवका दाहकर **सुवर्ण कुंभ** मुनिसे ७०० राजाओं सहित दीक्षा ली। और कर्मोंका नाश कर मोक्ष गये।

(१३) नारायणका राज्य उनके पुत्र श्रीविजयको मिला। और द्वितीय पुत्र **विजयभद्र** युवराज बनाये गये।

(१४) राज्यके पुरोहितने अपनी भोजनकी थालीमें कोडी पडी देखी और मस्तक पर अग्निके फुलिंगे उड़ते व पानीके छींटे पड़ते देखे। उसपरसे निमित्त ज्ञान द्वारा उसने राजासे यह फल कहा कि राज्यासनके ऊपर आकाशसे खड्ग पडेगा तब निश्चय किया गया कि गादीपर महाराज श्री विजय न बैठकर उनकी मूर्ति रखी जाय और ऐसा ही किया गया। अतमें उस मूर्तिपर खड्ग पड़ा और श्रीविजय बच गया।

(१९) श्रीविजयकी स्त्री ताराको विद्याधर हर कर ले गया था जिसे युद्ध द्वारा श्रीविजय वापिस लाया।

पाठ पचवीसवाँ।

तीर्थंकर वॉसुपूज्य (बारहवें तीर्थंकर)

(१) भगवान् श्रेयॉसनाथके चोपन सागर बाद वॉसुपूज्य तीर्थंकर उत्पन्न हुए। इनके जन्मसे बहत्तर लाख वर्ष कम पोनपल्य (तीन चतुर्थांश) समय पहिलेसे धर्ममार्ग बंद हो गया था।

(२) आषाढ़ वदी छठको भगवान् वॉसुपूज्य माताके गर्भमें आये। माताने सोलह स्वप्न देखे। गर्भमें आनेके छह माह पूर्वसे जन्म होने तक पंद्रह माह रत्नोंकी वर्षा देवोंने की व गर्भ कल्याणक उत्सव मनाया।

(३) आपके पिताका नाम वसुपूज्य और माताका नाम जयावति था। वंश इक्ष्वाकु और गोत्र काश्यप था। पिता वसुपूज्य चंपापुरीके राजा थे। यहा पर भगवान् वॉसपूज्यका जन्म फाल्गुन वदी चतुर्दशीको हुआ। इन्द्रादि देवोंने मेरुपर्वतपर ले जाना, अभिषेक करना आदि जन्म कल्याणकका उत्सव किया।

(४) आपकी आयु बहत्तर लाख वर्षकी थी और शरीर पिचहत्तर धनुष ऊँचा था। आपका वर्ण कुंकुमके समान (लाल) था।

(५) आपके साथ खेलनेको स्वर्गसे देव आया करते थे और वहींसे आपके लिये वस्त्राभूषण आते थे।

(६) आप अठारह लाख वर्ष तक कुमार अवस्थामें रहे।

(७) आप बालब्रह्मचारी थे। कुमार अवस्थाके बाद आपको वैराग्य हुआ और फाल्गुन वदी चतुर्दशीके दिन छहसो छियत्तर राजाओं सहित तप धारण किया। चौथा मनःपर्ययज्ञान आपको उत्पन्न हुआ। और इन्द्रादि देवोंने तप कल्याणक उत्सव मनाया।

(८) एक दिन उपवासकर दूसरे दिन **महापुरके** राजा **सुंदरनाथके** यहां आपने आहार लिया। देवोंने राजाके यहां पंचाश्चर्य किये।

(९) एक वर्ष तपकर माघ सुदी द्वादशीके दिन केवलज्ञान प्राप्त किया। इन्द्रादि देवोंने समवशरण सभा बनाकर केवलज्ञान कल्याणक उत्सव मनाया।

(१०) आपकी सभामें इस भांति चार प्रकारका संघ था—

६६ **धर्म** आदि गणधर
१२०० पूर्वज्ञानधारी
६४०० अवधिज्ञान धारी
३९२०० शिक्षक मुनि
६००० केवल ज्ञानी
१०००० विक्रिया रिद्धिके धारी
६००० मनःपर्यय ज्ञानी
४२०० वादी मुनि
१०६००० **धरसेना** आदि आर्यिकाएं
२००००० श्रावक
४००००० श्राविकाएँ

(११) समस्त आर्यखंडमें विहार कर आयुमें एक हजार

वर्ष जब शेष रह गये तब चंपापुरमें पधारकर वहींपर समवशरण सभामें आपकी दिव्यध्वनि द्वारा उपदेशादि हुए। एक मास आयुमें बाकी रह जानेपर दिव्यध्वनिका होना बंद हुआ तब मंदारगिरिके वनमें शेष कर्मोंका नाशकर चोरानवे मुनियों सहित भादों सुदी चतुर्दशीको मोक्ष गये।

(१२) आपके मोक्ष जानेपर इन्द्रादि देवोंने दाह क्रिया की और निर्वाण कल्याणकका उत्सव मनाया।

पाठ छव्वीसवाँ।

द्वितीय प्रतिनारायण-तारक।

(१) भगवान् वासपूज्यके समयमें भोगवर्द्धनपुरके राजा श्रीधरके पुत्र तारक इस युगके द्वितीय प्रतिनारायण थे।

(२) यह भी दक्षिण भरतखड-तीन खडके-स्वामी थे।

(३) यह बडा प्रतापी परन्तु अन्यायी राजा था।

(४) जब इसकी आज्ञा द्विपृष्ट नामक नारायणने नहीं मानी तब उनके नाश करनेके लिये इसने एक दूत भेजकर कहलाया कि तुम्हारे यहाँ जो गंध नामक हाथी है सो वह हमें दो नहीं तो तुम्हारा मस्तक काट लिया जावेगा। इसपर इनका परस्पर युद्ध हुआ। प्रतिनारायणने नारायण द्विपृष्ठ पर चक्र चलाया। चक्र, नारायणकी प्रदक्षिणा देकर उनके दहिने हाथमें ठहर गया तब नारायणने तारकपर चलाया जिससे तारककी मृत्यु हुई और यह सातवें नरक गया।

पाठ सत्तावीसवाँ।

नारायण-द्विपृष्ठ और बलदेव-अचल।

(१) भगवान् वासपूज्यके समयमें द्वितीय नारायण और द्वितीय बलदेव-नारायण द्विपृष्ठ (दूसरे नारायण) और बलदेव अचल उत्पन्न हुए।

(२) ये दोनों भाई थे। द्विपृष्ट छोटे और अचल बड़े भ्राता थे।

(३) इनके पिता द्वारिका पुरीके राजा ब्रह्म थे। जिनकी सुभद्रा नामक महारानीसे अचल उत्पन्न हुए थे और दूसरी पूषा नामक रानीसे द्विपृष्ठका जन्म हुआ।

(४) नारायण द्विपृष्ठकी आयु बहत्तर लाख वर्षकी थी। और शरीर सत्तर धनुष ऊँचा था।

(५) अचलका वर्ण कुंदके पुष्प समान सुंदर और द्विपृष्ठका नीला था।

(६) इनके समयमें प्रतिनारायण तारक तीन खंडका स्वामी हुआ था। जिसे युद्धमें जीतकर द्विपृष्ठ तीनखंडके स्वामी हुए। इन पर तारकने चक्र चलाया था पर चक्रने इनकी प्रदक्षिणा दी और दहिने हाथमें आकर ठहर गया तब इन्होंने उसे तारक पर चलाया जिससे तारककी मृत्यु हुई।

(७) और नारायणोंके समान इनके यहाँ भी सात रत्न थे और अचलके पास चार रत्न थे।

(८) इनकी सोलह हजार रानियाँ थीं और चक्रवर्तीसे आधी संपत्ति और राज्य था।

(९) नारायण द्विपृष्ट मरकर नरक गया। भाई अचलने बहुत शोक किया फिर दीक्षा धारण की और मोक्ष गये।

समाप्त।

परिशिष्ट "घ"।

समवशरणकी रचना।

समवशरण केवलज्ञानियोंकी सभाका नाम है। अर्थात सर्वज्ञत्व प्राप्त होनेपर जिस सभामें दिव्यध्वनि हो उसे समवशरण कहते हैं। प्रत्येक तीर्थंकरोंका समवशरण समान होता है। समवशरण देवोंद्वारा बनाया जाता है। और यह आकाशमें बनता है। पृथ्वीसे सभामें जानेतक सीढ़ियाँ बना दी जाती हैं। यद्यपि समवशरण प्रत्येक तीर्थंकरोंके लिये समान ही बनाया जाता है—लंबाई चौड़ाई व रचना आदि समान ही होती है, पर पृथ्वीसे ऊँचाईका अंतर कम होता जाता है। भगवान् ऋषभदेवका समवशरण पृथ्वीसे जितने अंतरपर था दूसरे तीर्थंकरका उससे कम हुआ, तीसरेका और भी कम हुआ, इसी तरह चौवीसों तीर्थंकरके समवशरणका अंतर पृथ्वीसे कम होता गया था। समवशरणकी रचना इस भाँति होती है—

(क) पहिले ही रत्नोंकी धूलिका बना हुआ **धूलिसाल** होता है। उसके बाद **मानस्तंभ**[1] होता है जिसे देखते ही अभिमानियोंका मान गलित हो जाता है।

---

१ मानस्तंभका चित्र परिशिष्ट "त्र" में दिया गया है।

(ख) मानस्तंभके आस पास वावड़ियां होती हैं।

(ग) मानस्तंभसे आगे चलकर लता-वन होते हैं जिनमें छहों ऋतुओंके फल-फूल लगे रहते हैं।

(घ) लता-वनसे आगे पहिला कोट है जिसकी क्रांति रत्नके समान होती है। इसके दरवाजेपर देव लोग द्वारपालका कार्य करते हैं और इसके छज्जोंपर आठ मंगल द्रव्य रक्खे रहते हैं।

(ङ) इस पहिले कोटके दरवाजेके अनतर दोनों ओर दो नाटच-शालायें होती हैं।

(च) नाटचशालाओंके आगे मार्गके दोनों ओर दो धूपघट रहते हैं।

(छ) इससे आगे, मार्गके दोनों ओर दो दो, वन होते हैं। ये चारों वन आम, सप्तपर्ण, अशोक और चंपाके हुआ करते हैं। इन वनोंमें चैत्यवृक्ष होते हैं। जिनमें जिनेन्द्र भगवान्‌की मूर्ति होती है। इन वनोंके बाद वनकी वेदी रत्नोंसे जड़ी हुई होती है।

(ज) वनकी वेदीके बादकी भूमिपर एकसो आठ ध्वजायें होती हैं इन ध्वजाओंपर सिंह, वस्त्र, कमल, मयूर, हाथी, गरुड़, पुष्पमाला, बैल, हस और चक्र ये दश चिन्ह होते है।

(झ) इसके बाद दूसरा कोट रहता है यह चांदीका होता है। इसके दरवाजेके बाद दोनों ओर फिर दो नाटचशालाएं होती हैं।

(ञ) इनके बाद कल्पवृक्षोंका वन होता है। इस वनमें सिद्धार्थ वृक्ष होते हैं जिनमें सिद्ध परमेष्टीकी प्रतिमा रहती है। इस बनकी भी वेदी रहती है।

(ट) वेदीके बाद बड़े बड़े तीन चार और पांच मजिलके मकान होते है। इनमें देवगण रहते हैं।

(ठ) मकानोंके बाद स्तूप रहते हैं जिनपर भगवान्‌की प्रतिमाएँ विराजमान रहती हैं।

(ड) स्तूपोंके बाद स्फटिकमणिका तीसरा कोट होता है। इस कोटके दरवाजेपर कल्पवासी जातिके देव महाद्वारपालका कार्य करते हैं।

नोट—समवशरणका आकार गोल होता है। ऊपर लिखी रचना एक दिशाकी है। इसी प्रकार चारों दिशाओंकी रचना समझना चाहिये।

(ढ) तीसरे कोटके बाद एक योजन लंबा और एक योजन चौड़ा गोल श्रीमंडप होता है यही सभास्थान है।

(ण) इसके बीचमें तीन कटनीकी गंधकुटी होती है जिसमें पहिली कटनीपर चारों ओर यक्षोंके इन्द्रोंके मस्तकों पर चार धर्मचक्र होते हैं, दूसरी कटनीपर चक्र, हाथी, बैल, कमल, सिंह, पुष्पमाला, वस्त्र, गरुड़ इन आठों चिन्होंको आठ महाध्वजायें होती हैं। तीसरी कटनीपर गंधकुटी होती है गंधकुटीके भीतर रत्नोंका सिंहासन होता है। जिसपर तीर्थंकर या केवली भगवान् विराजमान होते हैं। सिंहासनके ऊपर तीन छत्र रहते हैं। सिंहासनके पास अशोकवृक्ष होता है। अर्हंतके मस्तकके आसपास प्रभामंडल रहता है जिसका प्रकाश सूर्यके समान होता है और जिसमें प्रत्येक देखनेवाले प्राणीके सात सात भूत, भविष्यत् कालके भव दिखाई देते हैं।

(त) अर्हंतके चार मुख चारों दिशाओंमें दीखते हैं।

परिशिष्टमें जो कुछ लिखा गया है वह सब चौवीस तीर्थंकरोंके जीवन संबंधमें समझना चाहिये।

(१) **तीर्थंकरोंका शरीर**—तीर्थंकरोंके शरीरमें साधारण मनुष्यके शरीरसे निम्नलिखित विशेषतायें होती हैं।

(क) संसारके दूसरे मनुष्योंमें न पाया जाय ऐसा रूप।

(ख) सुगंधयुक्त शरीर।

(ग) शरीरमें पसीना न होना।

(घ) मल-मूत्रका न होना।

(ङ) इनके सब वचन मीठे और हितरूप होते हैं।

(च) किसीमें न पाया जाय इतना (अनुपम) बल।

(छ) सफेद रुधिर (खून)।

(ज) शरीरमें एक हजार आठ लक्षण।

(झ) शरीरके आंगोपांगोंका यथोचित स्थानपर-समभागमें होना।

(ञ) वज्रवृषभनाराचसहनन (किसी भी तरहसे छिद-भिद न सके ऐसा शरीर)

ये जन्मके दश अतिशय कहलाते है।

(२) **पंच कल्याणक**—प्रत्येक तीर्थंकरके पंच कल्याणक उत्सव इन्द्रादि देवों द्वारा किये जाते हैं अर्थात् गर्भके समय, जन्मके समय, तपके समय, केवलज्ञान प्राप्त होनेपर और मोक्ष जानेपर। ये पांचों कल्याणकोत्सव सब तीर्थंकरोंके एकसे होते हैं। इन उत्सवोंमें इस भाँति कार्य किया जाता है।

१ गर्भ कल्याणक उत्सव—

(क) गर्भमें आनेके छह माह पहिलेसे इन्द्रादि देवों द्वारा प्रतिदिन तीन् वार साड़े दश करोड़ रत्नोंकी वर्षा होना।

(ख) पंद्रह मास पहिलेसे जन्म नगरकी विशाल रूपसे सुदरता पूर्वक देवों द्वारा रचना होना. और उसमें माता-पिताके लिये राजभवनका देवों द्वारा बनना।

(ग) भगवान्के गर्भमें आनेपर इन्द्रादि देवों द्वारा नगरकी प्रदक्षिणा देना।

(घ) गर्भमें आनेके पहिले देवियों द्वारा माताका गर्भ संशोधन होना और गर्भमें आनेपर देवियों द्वारा माताकी सेवा होना।

(ङ) गर्भमें अन्य बालकोंकी भाँति उलटे न रहकर सीधे रहना (सिंहासनपर)।

(च) माताका सोहल स्वप्न[1] देखना।

(छ) माता-पिताका अभिषेक देवों द्वारा होना।

२ जन्म कल्याणक उत्सव—

(क) मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान युक्त उत्पन्न होना।

(ख) जन्म होनेपर स्वर्गमें इस भाँति घटनायें होना।

१ कल्पवासी देवोंके यहाँ स्वयमेव घंटोंका बजना।

२ ज्योतिषियोंके यहाँ सिंहनादका स्वयमेव होना।

---

१ सोलह स्वप्न महाराज नाभिरायके पाठ पाचवेंमें बतलाये गये हैं ये ही सोल स्वप्न तीर्थंकरोंकी माताओंको आते हैं।

३ भवनवासियोंके यहाँ ध्वनिका स्वयं होना।

४ व्यंतरोंके यहाँ तासोंका बजना।

५ इन्द्रका आसन कँपने लगना।

(ग) आसनके कँपने–हिलनेपर इन्द्र अवधिज्ञानसे तीर्थंकरके उत्पन्न होनेका हाल जानता है और उसी समय आसनसे उठकर नमस्कार करता है। फिर वह एक लाख योजनका हाथी विक्रियासे बनाता है जिसकी सात सूँडें होती हैं। इसे **ऐरावत** हाथी कहते हैं। प्रत्येक सूँडपर दो दाँत और प्रत्येक दाँतपर एक २ तलाव बनाता है, प्रत्येक तलावमें एकसो पचीस कमलिनियाँ बनाता है, जिनमें एकसो आठ पाँखुडोंके पच्चीस पचीस कमलके फूल होते हैं, कमलके फूलकी प्रत्येक पाँखुड़ीपर अप्सरायें नृत्य करती हैं। ऐसे हाथीपर चढ़कर प्रथम स्वर्गके इन्द्र व इन्द्रानी तथा और भी इन्द्र, सब अपने परिवार और देवोंकी प्रजाके साथ भगवान्‌के जन्म–नगरमें आते हैं। और उस नगरकी तीन प्रदक्षिणा जय जय शब्द बोलते हुए देते हैं। फिर इन्द्रानीको प्रसूतिगृहमें भेजते हैं वहाँ इन्द्रानी मायारूप दूसरा बालक रखकर तीर्थंकरको उठा लाती है और इन्द्रके हाथोंमें देती है, तब इन्द्र उन्हें नमस्कार करता है और उनके सुंदररूपको देखनेके लिये एक हजार नेत्र बनाता है तो भी तृप्त नहीं होता। फिर प्रथम स्वर्गका इन्द्र भगवान्‌को उस हाथीपर गोदीमें बिठलाकर मेरु पर्वतपर जाता है। मार्गमें ईशान इन्द्र भगवान्‌पर छत्र लगाता है और सनत्कुमार व महेन्द्र नामक इन्द्र चँवर ढालते हैं। बाकीके

इन्द्रादि 'जय' शब्दका उच्चारण करते हुए जाते हैं। मेरु पर्वतपर पहुंचकर उस पर्वतके पाडुकवनमें जो अर्द्धचंद्राकार पांडुकशिला (रत्नमय) है इस शिलापरके रत्नोंके मडपमें सिंहासन रखकर पूर्व दिशाकी ओर मुँहकरके भगवान्‌को विराजमान करते हैं। इस शिलापर अष्टमगल द्रव्य भी रहते हैं। इस समय अनेक प्रकारके बाजे बजते हैं। इन्द्रानियॉ मंगल—गान गाती है। अप्सरायें नाटक करती हैं। ऐसे उत्सव करते हुए क्षीरसागरके जलसे एक हजार आठ कलशों द्वारा सौधर्म और ईशान इन्द्र भगवान्‌का अभिषेक करते हैं। क्षीरसागरसे मेरु पर्वत तक देवगण जलको हाथोंहाथ (एकके हाथसे दूसरेके हाथमें देकर) पहुँचाते हैं। जिन कलशोंसे अभिषेक किया जाता है उनका मुह एक योजनका, भीतर हिस्सा चार योजनका होता है और लंबाई आठ योजनकी होती है। अभिषेकके बाद इन्द्र स्तुति करता है और भगवान्‌का नाम प्रगट करता है। इन्द्रानिया भगवान्‌का शृंगार करती है। इस प्रकार मेरु पर्वतपर क्रिया करनेके बाद माता—पिताके यहा लाते है और माताको देकर बहुत हर्ष मनाते हुए कुवेरको उनकी सेवामे छोड़कर सब इन्द्र व देव अपने अपने स्थानपर जाते है।

(घ) भगवान्‌के साथ खेलनेको स्वर्गसे देवगण बालकका रूप धारण करके आते है।

(ङ) भगवान्‌के लिये वस्त्राभूषण स्वर्गसे ही आते हैं।

(च) तीर्थंकर किसीके पास नहीं पढ़ते।

३ तप कल्याणक उत्सव—

(क) वैराग्य होते ही लौकांतिक देवोंका आना, स्तुति करना और वैराग्य धारणके भावोंकी प्रशंसा करना।

(ख) इन्द्रादि देवोंका पालकी लेकर आना।

(ग) कुछ दूर तक राजाओं द्वारा पालकीका वनकी ओर ले जाना फिर देवों द्वारा आकाश मार्गसे वनको ले जाना।

(घ) देवोंका स्तुति, पूजा और अभिषेक करना।

(ट) तीर्थंकर अन्य पुरुषोंके समान तप धारण करते समय 'ॐ नमः सिद्धेभ्यः' कहकर केशलोंच नहीं करते किंतु "नमः सिद्धेभ्यः" कहकर करते हैं। लोंच किये हुए केशोंको इन्द्र रत्नके पिटारेमें रखकर ले जाता है और क्षीरसागरमें क्षेपण (डालता) करता है।

(च) तप धारण करनेके बाद तीर्थंकर पहिले पहिल जिसके यहाँ आहार करते हैं उसके यहाँ पंचाश्चर्य होने हैं अर्थात् देवगण रत्नवर्षा १ गंधोदककी वर्षा २ आदि करते हैं।

४ ज्ञान कल्याणक उत्सव—

(क) केवलज्ञान होनेपर ज्ञान कल्याणक किया जाता है। केवलज्ञान होते ही इस प्रकार अतिशय होते हैं।

(क) सौ योजन लंबे चौड़े क्षेत्रमें सुकाल हो जाता है।

(ख) केवलज्ञानी होनेपर आकाशमें गमन करने लगते हैं।

(ग) चारों दिशाओंमें चार मुख दीखते हैं। यद्यपि होता एक ही है, पर अतिशयसे चार दिखाई देते हैं।

---

१ लौकांतिक देव पांचवें स्वर्गमें होते हैं। ये ब्रह्मचारी होते हैं।

(घ) किसीके द्वारा उपसर्ग नहीं होता और न कोई वैर करता है।

(ङ) कवलाहार नहीं करते (केवली होनेपर भोजन-पानकी आवश्यकता नहीं रहती)।

(च) सम्पूर्ण विद्याओंके स्वामी हो जाते हैं।

(छ) ईश्वरत्व प्रगट हो जाता है।

(ज) नख और केश नहीं बढते।

(झ).पलक नहीं लगते।

(ञ) शरीरकी छाया नहीं पडती।

(ख) उक्त दश अतिशयोंके सिवाय देवों कृत चौदह अतिशय नीचे लिखे मुताविक होते हैं।

(क) केवलीका उच्चारण अर्धमागधी भाषारूप हो जाना।

नोट–केवल ज्ञानियोंका उच्चारण अनक्षर होता है अर्थात् कठ, तालु आदि अगोंकी सहायताके विना ही मेघोंकी ध्वनिके समान होता है उसे देवगण अर्धमागधी भाषारूप कर देते हैं। तथा आपकी ध्वनिमें एक अतिशय यह भी होता है कि सब प्राणी (पशु तक) उसे अपनी अपनी भाषामें समझ लेते है। यहदिव्य ध्वनि विना इच्छाके होती है।

(ख) जीवोंमें परस्पर मैत्री।

(ग) दिशाओंका निर्मल हो जाना।

(घ) आकाशका निर्मल हो जाना।

(ङ) छहों ऋतुओंके फल–फूलोंका एक साथ फलना।

(च) पृथ्वीका कॉचके समान निर्मल हो जाना।

(छ) विहार करते समय देवों द्वारा चरणोंके नीचे कमलोंका रचा जाना।

नोट—भगवान्‌का विहार भी बिना इच्छाके होता है। विहार करते समय आप अधर-आकाशमें चलते हैं और देवगण चरणोंके नीचे कमल रखते जाते हैं।

(ज) विहारके समय जय जय शब्दका होना।

(झ) मंद मंद सुगंधित वायुका चलना।

(ञ) सुगंधित जल (गंधोदक) की वर्षा होना।

(ट) भूमिका कंटक रहित हो जाना।

(ठ) पृथ्वीपर हर्ष ही हर्षका होना।

(ड) धर्मचक्रका आगे चलना (विहारके समय यह चक्र आगे आगे चलता है)।

(ढ) अष्टमंगल द्रव्योंका आगे चलना।

(ग) केवलज्ञान होनेपर भगवान्‌की समवशरण नामक एक सभा बनाई जाती है। इस सभाका पूरा वर्णन परिशिष्ट 'घ' में दिया गया है।

(घ) केवलज्ञान होनेपर निम्नलिखित आठ प्रातिहार्य होने हैं।

(क) अशोक

(ख) सिंहासन

(ग) तीन छत्र

(घ) भामंडल

(ङ) दिव्यध्वनि

(च) पुष्पवृष्टि

(छ) चौंसठ चमर

(ज) दुंदुभी बाजे

(झ) केवलज्ञान होते ही भगवान् अनंतचतुष्टययुक्त हो जाते हैं।

१ अनंत दर्शन, २ अनंत ज्ञान, ३ अनंत सुख, ४ अनंत वीर्य।

(च) भगवान्‌के भामंडलमें प्रत्येक मनुष्यके सात भव भूत-कालके और सात भविष्यके दीखते हैं।

५ मोक्ष कल्याणक उत्सव—

(क) स्वर्गसे इन्द्रादि देवोंका आना और शरीरका चंदना-दिके साथ अग्निकुमार जातिके देवोंके मुकुटकी अग्निसे दाह करना।

(ख) भस्म मस्तकपर लगाना।

(ग) स्तुति, पूजा आदि करना।

(२) परिशिष्ट "ङ"

(चक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनारायण आदिके जीवनकी समान घटनायें)

(१) चक्रवर्तीः—

(क) प्रत्येक चक्रवर्तीके मल-मूत्र नहीं होता।

(ख) चक्रवर्तियोंके छ्यानवे छ्यानवे हजार रानियाँ होती हैं।

(ग) चक्रवर्ति छह खंड पृथ्वीका स्वामी होता है। छह खंड पृथ्वी—पांच म्लेच्छ खंड और एक आर्य खंड जिसका

कि विजय चक्रवर्ती करता है। इसका वर्णन भरत चक्रवर्तीके पाठमें किया गया है वहाँ देखना चाहिये।

(घ) चक्रवर्तीकी संपत्ति–भरत चक्रवर्तिके पाठमें जो बताई गई है–होती है। प्रत्येक चक्रवर्तीकी उतनी ही संपत्ति समझना चाहिये।

(ङ) प्रत्येक चक्रवर्तीमें छह खंडके सम्पूर्ण प्राणियोंके बलसे कई गुन बल होता है।

(च) चक्रवर्तियोंके शरीरमें चौंसठ लक्षण होते हैं।

(२) बलदेव:—

(क) बलदेव नारायणके बड़े भाई होते हैं। यद्यपि नारायण और बलदेव एक ही पिताके पुत्र होते हैं, पर मातायें दोनोंकी न्यारी न्यारी होती हैं।

(ख) बलदेवके लिये चार रत्न उत्पन्न होते हैं। इनके नाम विजय नामक पहिले बलदेवके वर्णनसे जानना चाहिये जो कि पाठ चौवीसवेमें दिया गया है।

(ग) बलदेव और नारायणमें दूसरोंमें न पाया जाय ऐसा परस्पर प्रेम होता है।

(घ) नारायणके मरनेपर बलदेव उसके शवको छह महीने लेकर इधर–उधर फिरते हैं। उस वक्त वे समझते हैं कि भाई नाराज हो गया है।

(ङ) इनके भी मल मूत्र नहीं होता।

(३) नारायण–

(क) इनके शरीरमें भी मल–मूत्र नहीं होता।

परिशिष्ट "ज"।

(१)

पुराणकारोंमें परस्पर मतभेद।

इस पुस्तकमें (प्राचीन जैन इतिहास) जो कुछ लिखा गया है वह जैनसमाजके अनन्य श्रद्धास्पद भगवान् जिनसेन और गुणभद्रके मतसे लिखा गया है, पर अन्य ग्रंथकारोंका इनसे किसी किसी घटनामें मतभेद है। यहां वही दिखलाया जाता है।

(१) भगवान् ऋषभदेवके गर्भमें आनेकी तिथि आदिपुराणकार श्रीजिनसेनस्वामीने आषाढ सुदी दूज मानी है। और हरिवंशपुराणकार जिनसेनस्वामीने आषाढ़ वदी दूज मानी है।

(२) भगवान् ऋषभदेवकी स्त्रियोंका नाम आदिपुराणकार यशस्वती और सुनंदा बतलाते हैं; पर हरिवंशपुराणकारने नंदा और सुनंदा लिखा है। संभव है कि यशस्वतीका उपनाम नंदा भी हो।

(३) आदिपुराणकारने सोमप्रभ, हरि, अकंपन और काश्यपको कुरु आदि चार वंशोंके स्थापक माना है; पर हरिवंशपुराणकार कुरु आदि वंशोंके स्थापक भगवान् ऋषभहीको मानते हैं।

(४) आदिपुराणकारने हरिवंशकी उत्पत्ति भगवान् ऋषभके समयमें महामंडलेश्वर "हरि" के द्वारा बतलाई है; पर हरिवंशपुराणकार लिखते हैं कि शीतलनाथ भगवान्के तीर्थ समयमें चंपापुरीके राजा हरिसे हरिवंशकी उत्पत्ति हुई।

(५) ब्राह्मण वर्णकी उत्पत्तिके संबंधमें आदिपुराणकारने लिखा है कि भरत चक्रवर्तीको जब दान देनेकी इच्छा हुई तब

उन्होंने अपने आधीनस्थ राजाओंके सदाचारी मित्र व कर्मचारियोंको बुलाया और उनकी परीक्षाकर व्रती श्रावकोंका ब्राह्मण वर्ण स्थापन किया और इस वर्णकी स्थापनाके समाचार स्वयं चक्रवर्तीने भगवान् ऋषभसे निवेदन किये। इस संबंधमें पद्मपुराणकार लिखते हैं कि जब भगवान् ऋषभका समवशरण अयोध्याके समीप आया तब चक्रवर्तीने भगवान्से मुनियोंका स्वरूप पूछा। भगवानने जब मुनियोंके स्वरूपको बतलाया तब भरतने मुनियोंको निग्रह जान श्रावकोंको दान देनेकी इच्छा की और भोजनार्थ बुलाया। उनमें जो श्रावक वनस्पतिको पावोंसे रूंदते हुए नहीं आये उनका चक्रवर्तीने सन्मान किया और उन्हींका ब्राह्मण वर्ण बनाया। चक्रवर्तीके द्वारा इस प्रकार सन्मानित होनेके कारण कई ब्राह्मण गर्विष्ट (अभिमानी) हो गये और कई लोभके कारण धनिकोंसे याचना करने लगे। तब मतिसमुद्र मंत्रीने कहा कि मैंने भगवान् ऋषभके मुखसे समवशरणमें सुना है कि ब्राह्मण वर्ण पंचम कालमें धर्मका विरोधी होगा। इसपर भरत ब्राह्मणोंपर क्रोधित हुए। तब ब्राह्मण भगवान्के पास गये। भगवान्ने भरतसे कहा कि भविष्य ऐसा ही है अतएव तुम कशाय मत करो।

(६) भगवान् अजितनाथके साथ एक हजार राजाओंने दीक्षा ली ऐसा भगवद्गुणभद्रका मत है। रविषेणाचार्य दश हजार राजाओं सहित अजितस्वामीका दीक्षा लेना बतलाते हैं।

(७) उत्तरपुराणकार गुणभद्रस्वामीने चक्रवर्ती सगरके साठ हजार पुत्रोंका मणिकेतु नामक देवके द्वारा कैलाशकी खाई खोदते

(६) भगवान् अजितनाथकी स्त्रीका नाम सुनयानंदा था। (प० पु०)

(७) सगर चक्रवर्तीकी माताका नाम सुबाला और पिताका नाम समुद्रविजय उत्तरपुराणकारने लिखा है और पद्मपुराणमें विजयसागर पिताका नाम व माताका नाम सुमंगला लिखा है। भाव देखनेसे पिताका नाम तो दोनोंके मतसे ठीक बैठ जाता है पर माताके नाममें अंतर रहता है।

(८) सगर चक्रवर्तीके विवाहके विषयमें पद्मपुराणमें लिखा है कि " भरतक्षेत्रके विजयार्द्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीके चक्रवाल नगरके राजा पूर्णधर विद्याधरने तिलक नगरके नरेश सुलोचनकी कन्यासे विवाह करना चाहा, पर सुलोचनने उसे नहीं दी, सगर चक्रवर्तीको देना चाहा। इसपर दोनोंका युद्ध हुआ। सुलोचन युद्धमें मारा गया। तब सुलोचनका पुत्र सहस्त्रनयन अपनी बहिन उत्पलमतीके साथ भाग कर वनमें छिप गया। इधर चक्रवर्तीको मायामई अश्व उड़ा कर उसी वनमें जहाँ सहस्त्रनयन छिपा था, ले गया। वहाँ सहस्त्रनयनने उत्पलमतीके साथ सगरका विवाह किया। यही उत्पलमती सगर चक्रवर्तीका स्त्रीरत्न थी।

परिशिष्ट "ञ"।

विद्याधर।

इस पुस्तकके पहिले पाठमें भरतक्षेत्रके मानचित्रमें जो विजयार्द्ध पर्वत दिखलाया गया है उसके ऊपर दक्षिण और उत्तरकी श्रेणीमें रहनेवाले मनुष्य विद्याधर कहलाते थे। ये प्राय

अपनी विद्याओंके बलसे आकाशमें चलते फिरते थे और आकाश मार्ग ही से प्रायः युद्ध करते थे। इनके बहुतसे कार्य विद्या बलसे होनेके कारण ये विद्याधर कहलाते थे। आकाश मार्गमें ये लोग विमानोंके द्वारा भ्रमण करते थे। इन विमानोंकी गति बहुत तीव्र हुआ करती थी। ये लोग आर्यखंडके रहनेवालोंसे भूमिगोचरी कहते थे। इतिहासके देखनेसे ज्ञात होता है कि भूमिगोचरी भी विद्याधर हो सकते थे। विद्याधरोंको विद्याएँ तीन मार्गोंसे प्रायः प्राप्त हुआ करतीं थीं। पहिला मार्ग–विद्या सिद्ध करना, दूसरा मार्ग अपने पूर्वजोंसे प्राप्त करना और तीसरा मार्ग धरणेन्द्र आदि देवोंद्वारा प्राप्त होना। ये सब विद्याएँ प्रायः देवोंके आधीन हुआ करतीं थीं। अर्थात् विद्या संबंधी सर्व कार्य देव किया करते थे। विद्याओंके बलसे विद्याधर क्षणमात्रमें नगर बना और बसा देते थे। मनुष्योंके कई रूप बना लिया करते थे। सारांश यह कि जो ये चाहते वही तत्क्षण बनजाया करता था। वर्तमान अवसर्पिणी कालमें विद्याधरोंके सबसे पहिले राजा नमि विनमी हुए हैं। ये भूमिगोचरी थे। और जब भगवान आदिनाथने कुटुम्बियों आदिको राज्य वितरणकर तप धारण कर लिया था तब उक्त दोनों भाइयोंने आकर भगवान्से राज्य मांगा था उस समय धरणेन्द्रने इन्हें कई विद्याएं देकर विद्याधरोंकी दोनों श्रेणियोंके राजा बना दिये थे। विद्याधर अपनी कन्याएं भूमिगोचरीको भी दिया करते थे और लेते भी थे। नमि विनमिने अपनी बहिन सुभद्राका विवाह भरत चक्रवर्तीसे किया था जो कि भूमिगोचरी थे। आकाश मार्गसे युद्ध करनेपर भी भूमिगोचरी इन्हें जीत भी सकते

थे। पर उसके लिये बड़े बलकी आवश्यकता होती थी। भूमि-गोचरी भी विद्याएँ रखते थे, पर बहुत कम। विद्याधरोंका युद्ध भी प्राय विद्याओंसे हुवा करता था। एक पक्ष विद्याओंसे सर्प छोडकर शत्रु पक्षके योद्धाओंको कष्ट देता तो दूसरा पक्ष गरुड़ोंको छोड़ता था। कभी एक पक्ष बादलोंको बना और जल वर्षाकर कटकमें अन्धकार करता तो दूसरा पक्ष दूसरी जातिकी विद्यासे उसे दूर करता। इसी प्रकार विद्याओं और बाणोंसे युद्ध हुआ करता था। पृथ्वीपर भी युद्ध करते थे। भगवान् वासुपूज्यके समय तक विद्याधरोंमें ऐसे कोई प्रसिद्ध पुरुष नहीं हुए हैं जिनके कारण वहाँके इतिहासमें कुछ परिवर्तन हुआ हो। और यद्यपि इनके आचार विचार आर्यखंडके मनुष्योंही के समान प्राय: होते थे पर तो भी इनकी जाति आर्यखंडके निवासियोंसे पृथक् होनेके कारण हमने इस भागमें इनका कुछ विशेष वर्णन नहीं किया है।